UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180324

UNIVERSAL
LIBRARY

काव्य-मकरन्द

डा० भगीरथ मिश्र
एम. ए. पी-एच. डी.
रीडर : हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी—१

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 M67K Accession No. G.H. 2978

Author मिश्र, अगीरथ

Title काव्य मकरन्द १९६७

This book should be returned on or before the date last marked below.

काव्य-मकरन्द

डा० भगीरथ मिश्र
एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी-१

प्रकाशक :
ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बा० नं० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी—१

मूल्य : तीन रुपये पचास नये पैसे
जून, १९६०

मुद्रक :
शिवपूजन पाण्डेय
राजेन्द्र प्रेस
सोराकूआँ, वाराणसी—१

विषय-सूची

विषयानुक्रम		पृष्ठ-संख्या
हिन्दी कविता का विकास		७
निर्गुण धारा—		१७
(१) सन्त कबीर	...	१८
(२) जायसी	...	२६
सगुण धारा के कवि—		३७
(१) महात्मा सूरदास	...	३८
(२) गोस्वामी तुलसीदास	...	५०
(३) मीराँबाई	...	६४
(४) सेनापति	...	७०
रीतिकालीन परम्परा के कवि—		७७
(१) केशव दास	...	७८
(२) बिहारी लाल	...	८७
(३) देवदत्त 'देव'	...	६५
(४) पद्माकर	...	१०१
(५) जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	...	१०७
आधुनिक सन्धिकालीन कवि—		११५
(१) 'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र	...	११६
(२) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	...	१२६
(३) मैथिलीशरण गुप्त	...	१३२
आधुनिक हिन्दी नवीन धारा के कवि—		१४१
(१) जयशंकर 'प्रसाद'	...	१४२
(२) श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	१५७

विषयानुक्रम		पृष्ठ-संख्या
(३) श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'	...	१६५
(४) महादेवी वर्मा	...	१८२
(५) डा० रामकुमार वर्मा	...	१९२
आधुनिक हिन्दी 'राष्ट्रीय धारा'		२००
(१) माखनलाल चतुर्वेदी	...	२०१
(२) रामधारी सिंह 'दिनकर'	...	२१०

प्रस्तावना के दो शब्द

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में कविताओं का संकलन इण्टरमीडिएट कक्षाओं के विद्यार्थियों के निमित्त किया गया है। उनकी किशोर वय में जिन विविध-प्रवृत्तियों का जन्म तथा विकास होता है और उनके ज्ञानविकास में जिस प्रकार की मानसिक सामग्री वांछनीय होती है उसका ध्यान इस संकलन में विशेष रूप से रखा गया है। इस समय तक वे भाषा के विविध अङ्गों से परिचित हो जाते हैं, मुहाविरों के स्वाभाविक प्रवाह को पहिचानने लगते हैं और कुछ-कुछ कविता की कलात्मक-अभिव्यक्ति से भी परिचय प्राप्त कर लेते हैं। साहित्यिक अभिरुचि की दृष्टि से यह किशोर-वय का समय उनकी कोमल भावनाओं के उदय का काल होता है; अतएव मनोविकास के इस काल में उनमें उदारता, स्फूर्ति, उत्साह, त्याग, सत्यनिष्ठा, सौहार्द, स्पष्टोक्ति और सामाजिकता की मूल-भावनाएँ भरना अत्यावश्यक है। उक्त प्रवृत्तियों के लिए किशोर-वय मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उत्कंठित रहती है। अतएव इस समय जो भी साहित्य उनके सम्मुख प्रस्तुत किया जावे उसमें उपर्युक्त प्रकार की सामग्री का पर्याप्त परिमाण आवश्यक है। इस दृष्टि से प्रस्तुत संकलन का प्रयास विशेष महत्वपूर्ण है।

इस समय विद्यार्थियों का उत्सुक मस्तिष्क विविध प्रकार की आलोचना और तर्क के क्षेत्र में प्रवेश करता है। यद्यपि इस प्रवृत्ति का जन्म तो उसके शिशुकाल से ही हो जाता है किन्तु सत्यासत्य, सदसत् और भले-बुरे की पहिचान करने में वह तीव्र इच्छा इसी समय दिखाता है; क्योंकि इस समय तक उसके पहिचाने हुए संसार के अनेक रंग और दिशाएँ उसके तर्कपूर्ण अनुभव के कक्ष में आने लगती हैं और उसमें विवेचना का सुन्दर विचार प्रारम्भ हो जाता

है। अतएव समय और प्रवृत्ति की पूर्ति के हेतु इस संकलन में कवियों का जीवनचरित, काव्यप्रदेश, पृष्ठभूमि, रचनाकाल की सामाजिक उद्भूतियाँ, समालोचकों के कथन और प्रत्येक काल की रचना-प्रवृत्तियों की विशेषताएँ दे दी गई हैं। जिनसे बालक अपनी समीक्षक-प्रवृत्ति विकसित कर सकें। जहाँ तक सम्भव हो सका है सभी प्रमुख कवियों की उत्कृष्ट रचनाएँ जो इस वय के विद्यार्थी के उपयुक्त समझी गई हैं—इस संकलन में संगृहीत हैं। कवि की रचना के विशेष गुण—जिनका परिचय प्रत्येक कवि के साथ दिया गया है—प्रस्तुत संकलन में अवश्य और प्रधान रूप से मिल जावें, इसका विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक काल तथा प्रवृत्ति-समूह के कवियों की विशेषताएँ भी यथा-स्थान प्रस्तुत कर दी गई हैं, जिससे विद्यार्थियों को काव्य-साहित्य की विभिन्न-कालीन रुचियों का ज्ञान भलीभाँति हो सके। हिन्दी-कविता का विकास किस प्रकार हुआ है और उसमें प्रगति का क्रम किस प्रकार लक्षित है—इसके लिये पाठ्यपुस्तक के आरम्भ में ही एक 'संक्षिप्त इतिहास' उपस्थित कर दिया गया है, जिसमें विद्यार्थी हिन्दी-कविता के विकास की एक संक्षिप्त कथा पा सकता है।

हम उन सब कवियों तथा रचनाकारों के चिरऋणी हैं जिनकी सुन्दर रचनाओं को संग्रहीत करके हमें अपने होनहार विद्यार्थियों के सम्मुख आने का और 'काव्य-मकरन्द' नामक पाठ्यपुस्तक प्रस्तुत करने का सुअवसर मिला है। तदर्थ धन्यवाद।

संकलनकर्त्ता—

हिन्दी-कविता का विकास

संवत् १३७५ विक्रमी के भारतवर्ष में भारतीय जनता के राजनीतिक क्षेत्र की बागडोर मुसल्मान शासकों के हाथ में थी। ये अपनी धार्मिक कट्टरता के लिए प्रसिद्ध थे। हिन्दू-जनता अब प्रायः अपने अतीत के स्वप्न खो बैठी थी। उसमें उत्साह का अभाव था। धर्म केवल संस्कारों और रूढ़िगत परम्पराओं में शेष रह गया था। सामाजिक जीवन बड़ा ही शिथिल और विक्षुब्ध था। धर्म का जो प्रवाह कर्म, ज्ञान और भक्ति की अविरल धाराएँ लेकर चलता है प्रायः शक्तिहीन तथा नीरस-सा लगने लगा था। कर्म के बिना समाज में निष्क्रियता, ज्ञान के बिना अन्धश्रद्धा और भक्ति के बिना हृदयहीनता तथा अनुदारता की ही वृद्धि होती है। भारतीय समाज इन तीनों का शिकार था। समाज में अंधश्रद्धा, अनुदारता, निष्क्रियता, ऊँच-नीच का भाव, धार्मिक कट्टरता और पारस्परिक विद्वेष का साम्राज्य था।

निर्गुण-धारा

ऐसे समय में सचमुच एक ऐसे धक्के की आवश्यकता थी जो समाज में चेतना उत्पन्न करे, सोतों को जगावे और 'लड़तों को समुझावे'। समाज का मनोवैज्ञानिक जागरण भी आवश्यकीय था। ऐसे जागरण के लिए साहित्य में पद्य-साहित्य ही अत्यधिक प्रभावशाली होता है, क्योंकि वह व्यक्ति के हृदय को छूने में सबसे अधिक प्रबल साधन है। मनुष्य की आन्तरिक वृत्तियों को जगाने और उन्हें सक्रियता की ओर प्रेरित करने में कविता जादू जैसा काम करती है। कायर को शूर बना देना, सोते को जगा

देना, निर्बल को बलशाली बना देना, अशक्त को साहसी बना कर खड़ा कर देना—आदि अकस्मात् परिवर्त्तन के ऐसे उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं जिनका आधार-भूत कविता रही है। मनुष्य-जाति को और समाज को संकेत करने में कवियों और कवि-वाणियों का महत्व सर्वविदित है।

भारतीय समाज और भारतीय साहित्य के इस युग में हमें महात्मा कबीर के दर्शन होते हैं! भारतीय समाज की उपरोक्त दीनावस्था के समय सौभाग्य से हमें कबीर जैसा निर्भीक जगाने वाला और सन्त कवि मिला। कबीर की पृष्ठभूमि में एक ओर हमें नाथपंथी धार्मिक विचार-धारा मिलती है, जो रहस्यात्मक थी और सर्वसामान्य के मस्तिष्क के परे थी। दूसरी ओर समाज में बहु-देववाद प्रचलित था जिसकी पूजा सगुणोपासना के दृष्टि-कोण से हो रही थी। यद्यपि भारतीय समाज को इन देवी-देवताओं की शक्ति का परिचय न मिलता था और न वे समाज के जीवन में कोई स्फूर्ति फूँकने के स्रोत रह गए थे, फिर भी भारतीय जनता अन्ध-श्रद्धालु बनी हुई थी। ऐसे समय कबीर ने एक निर्गुण ब्रह्म की उपासना का मंत्र फूँका जो सभी धार्मिक क्रियाओं से अधिक सरल और सीधा था। कबीर ने दोहा और पदों का सहारा लिया जिसमें उपदेश जैसी वस्तु सशक्तता से दी जा सकती है। कबीर ने जिस वाक्-शैली का सहारा लिया वह ऐसी चुभती हुई और खोटी-खरी सुनाने वाली थी कि कठोर से कठोर और जड़ हृदय पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहा। समाज का प्रत्येक ऊँच-नीच अङ्ग उनके उपदेशों को सुनकर चौंक उठा, तिलमिला गया, आश्चर्यचकित हो गया और बुद्धि को ठिकाने करने के फेर में पड़ गया। कबीर के उपदेश में सबसे अधिक प्रभावशाली बात यह थी कि वह पुरानी भारतीय परम्परा—अद्वैतवाद की पुट लिए हुए था, अतएव सामाजिक दृष्टि में जैसा का तैसा बैठ गया। कबीर की वाणी में सचाई और ईमानदारी

झलक पड़ी। कबीर ने हिन्दू और मुसल्मान दोनों को उनके बुरे विचारों और अन्ध-रूढ़ियों के लिये झिड़का। सीधी और सरल सुबोध बातें सबके दिलों में चुभने लगी। कबीर की भाषा साधुओं की बोली थी जो गरीब, अमीर, ऊँच, नीच सभी समझते थे। थोड़े ही दिनों में कबीर ने अपनी निर्गुणवाणी द्वारा समाज में एक नवीन चेतना उत्पन्न कर दी। कबीर का साहित्य इस दृष्टि से समाज के नवजागरण का कारण बना।

कबीर ने अपनी सन्त वाणी द्वारा जिस समाज को नींद से जगाया था वह बहुत कुछ लुब्धता की अवस्था में था। बुरे को बुरा कहना, अन्धे को अन्धा कहना सत्य अवश्य है, किन्तु मानव-हृदय के लिए कटु सत्य दुःखद भी होता है। हिन्दू-मुसलमानों को कबीर की तीव्र फटकार ने लुब्ध कर दिया था यद्यपि वे अब तक अपने दुर्गुणों को जान गए थे। इस लुब्ध हृदय को प्रेम के सूत से जोड़ देने का काम जायसी ने किया। जायसी भी कबीर की भाँति एकेश्वरवादी थे, किन्तु उनका साधन विध्वंसात्मक नहीं वरन् सृजनात्मक था। जायसी, सूफी कवि थे। प्रेम की पीर' की अनुभूति के प्रबल प्रचारक थे। उन्होंने अपने साहित्य द्वारा जो सबसे अनोखा काम करके समाज की सेवा की, वह है—हिन्दू परम्परा से प्रेम-कथाएँ लेकर सूफी मत के 'प्रेम दर्शन' का लोकव्यापी प्रचार। कबीर की उत्पन्न की हुई लुब्धता को इन्होंने हिन्दू प्रेम-कथाओं द्वारा बहुत कुछ दूर कर दिया। हिन्दू और मुस्लिम हृदयों को बहुत कुछ मिलाने में इनके साहित्य की अपूर्व देन है। 'पदमावत' इनके साहित्य का प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस प्रकार हम इस युग में कबीर और जायसी को एक-दूसरे का पूरक पाते हैं जिससे समाज का जागरण भी हुआ और समाज में सचाई, उदारता और प्रेम की भावना भी उत्पन्न हुई। कविता-साहित्य के इस युग में ये दोनों कवि अपने साहित्य की प्रभाविकता की श्रेष्ठता के कारण विशेष महत्वपूर्ण हैं।

सगुण-धारा

निर्गुण धारा के उक्त कवियों ने जागृति का काम तो प्रारम्भ किया किन्तु सामान्य जनता निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना को अपनी भक्ति का आधार न बना सकी। उसे तो ईश्वर का ऐसा स्वरूप चाहिए था जिसके साथ उसका अनुरंजन हो सके। इस सामाजिक अभाव की पूर्ति के लिए महात्मा सूरदास ने कृष्ण-साहित्य का सृजन किया। इस कृष्ण-साहित्य द्वारा जनता ने भगवान् के लोकरंजनकारी स्वरूप का आधार पाया। प्रेम और वात्सल्य का अपूर्व साहित्य सूरदास की देन है! सारा सूर-सागर उस प्रेम और वात्सल्य का अगाध समुद्र है जिसमें भारतीय जनता ने एक बार नहीं हजार बार भक्ति-रस की डुबकी लगाकर आत्मसन्तोष किया। भगवान् कृष्ण का जो स्वरूप सूर ने स्थिर किया उसका प्रभाव हिन्दी-साहित्य में सगुण और साकारोपासना की प्रबल धारा के रूप में व्यक्त हो उठा। भारतीय जनता ने सन्तोष की साँस ली और अपने नीरस जीवन को सरस बनाने का अवसर प्राप्त किया। सूर 'सखा भाव' के भक्त थे। वे गीत काव्य के कुशल कलाकार थे। उनके गीत सामान्य जनता के गीत बन गए। सूर-साहित्य मधुर और कोमल ब्रजभाषा में अवतरित हुआ जो प्रेम और वात्सल्य की अभिव्यंजना के लिए सदा से प्रसिद्ध रही है। सूर साहित्य की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता चाहे कला-पक्ष से देखी जावे चाहे हृदय-पक्ष से, दोनों रूप से एक अत्युत्तम दर्जे की है। सूर हिन्दी-साहित्य के ऐसे उत्कृष्ट कवि हैं जिनकी समानता उनकी दिशा में कोई भी नहीं कर सकता है। रस, अलंकार, काव्योचित शब्द-योजना, भाव-व्यंजना, तथा काव्य-प्रभविष्णुता में वे अद्वितीय हैं। हिन्दी-साहित्य में उनका स्थान दूसरा कोई नहीं ग्रहण कर सकता है।

भारतीय जनता अभी तक सम्पूर्णतया सन्तुष्ट न हो सकी थी। निर्गुण पंथ के कवियों ने उसे जगाया। महात्मा सूरदास ने उसे कुछ मनोरंजन प्रदान करके सुखी बनाने का प्रयत्न किया। किन्तु लोग तो साहित्य के क्षेत्र में ऐसा मानव-आदर्श चाहते थे जो भाई, बहन, माता, राजा, प्रजा, दीन, दुःखी, साधु, संन्यासी तथा सुख-दुःख का त्राता—जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका पूजार्ह बने और रक्षा करे। ऐसे मानवादर्श की स्थापना करने वाले भक्त-शिरोमणि, कविकुल-दिवाकर गोस्वामी तुलसीदास जी थे। उन्होंने भगवान् राम का वह समन्वयात्मक स्वरूप समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जिसमें सारे भारतीय समाज ने अपने उपरोक्त सम्बन्धों के आदर्श का स्वरूप देखा। 'रामचरित-मानस' में राम का रूप लोक-कल्याणकारी था। तुलसी का रामचरित-मानस भारतीय जनता का खोया हुआ 'वेद' बन गया। आज सदियों से वह राजमहल से लेकर झोपड़ी तक में सम्मानित है। भारतीय काव्य-धारा का यह समय सर्वोत्कृष्ट रचना का काल कहा जावेगा। राम-चरित मानस में राम की भक्ति 'कर्मक्षेत्र' का ज्वलन्त उदाहरण है। 'विनय पत्रिका' और 'दोहावली' में तुलसी ने भक्ति का अत्युत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है, जिसमें ज्ञान का संयोग पद-पद पर संयुक्त हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति की सामंजस्यपूर्ण प्रतिपादन की जो प्रतिष्ठा तुलसी ने की वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। तुलसी की ही व्यापक दृष्टि से अलंकार, रस, विविध शैलियाँ, शब्द-योजनाएँ, तथा काव्य का कला-पक्ष, हृदय-पक्ष में से कोई भी वस्तु तो छूटी दृष्टिगत नहीं होती है। उन्होंने अवधी और ब्रज दोनों में समान कुशलता से काव्य-रचना की। वे सगुणोपासन के भक्त थे। इसके अतिरिक्त कविता में उनकी कविता सर्वश्रेष्ठ और दृष्टिकोण में उनकी दृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म। समाजोत्थान में वे युगद्रष्टा और परम्परा में वे भारतीय समन्वयकारी धर्म के अद्वितीय प्रतिष्ठापक थे। हिन्दी-साहित्य में तुलसी का स्थान सर्वोपरि है। वे आज के भारत के स्रष्टा थे। अतीत की भारतीय संस्कृति की परम्परा का चरमोत्कर्ष उनके द्वारा हुआ; वे युगान्तकारी कवि थे।

रीतिकालीन धारा

तुलसी की काव्य-साधना के पश्चात् तो कितने ही कवि जनता के समक्ष आए किन्तु उनसे कोई नया सन्देश न मिला। इसके कारणों में बहुत कुछ तुलसी का विशेष महत्त्वपूर्ण होना भी है। सं० १७०० विक्रमी—में रीतिकालीन युग हिन्दी-काव्य के क्षेत्र में प्रधानता से आता है। इस युग में हम प्रमुख कवि केशवदास, बिहारी, देवदत्त, सेनापति, पद्माकर की रचनाएँ पाते हैं, केशव की रामचन्द्रिका, बिहारी की सतसई, देव का भावविलास और सुजान-विनोद आदि, सेनापति का 'कवित्त-रत्नाकर', पद्माकर का 'पद्माभरण' और रत्नाकर का 'उद्धवशतक' आदि रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस युग के कवियों में हम यह स्पष्ट देखते हैं कि कविता जनता के स्तर से हटकर राज-दरबारों में जा बैठी थी। प्रायः सभी कवि इस युग के राज-दरबारी मिलेंगे, जिन्होंने यश और लिप्सा को लक्ष्य बना कर काव्य की उपासना की। सभी राज-दरबारों के आश्रित रहे। सभी की प्रधान प्रवृत्ति अलंकार, रस, तथा रीति काव्यों के सृजन में रही। सभी में प्रायः शृङ्गार की प्रधानता थी। विलास के जीवन में कविता का वातावरण भी विलासी बन गया था। इस युग में प्रकृति-चित्रण भी जितना है वह भी राजदरबार के विलास में वृद्धि करने के हेतु ही संगृहीत किया गया ज्ञात होता हैं। कलापक्ष की प्रधानता रही और हृदय-पक्ष प्रायः नीरस रह गया। अलंकारों के चमत्कारों तथा अनुप्रासों के प्रदर्शन ने कविता को अप्राकृतिक और भावशून्य बना डाला। प्रायः सभी ने ब्रज-भाषा का आश्रय लिया। संस्कृत शैली पर रीति-ग्रंथों के रचना की प्रवृत्ति विशेष रूप से हमें इस युग में दिखाई पड़ती है। हिन्दी-साहित्य का यह समय रचना की विशिष्टता की दृष्टि से उतार का युग कहा जायगा। रीति-ग्रन्थों का सृजन इस युग की विशेषता है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य की पुरानी धारा

हिन्दी-काव्य-साहित्य की आधुनिक धारा के दर्शन हमें पुनः सं० १९२५ विक्रमी में होते हैं। इनके प्रमुख कवि प्रवृत्ति के अनुसार 'भारतेन्दु', 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त हैं। भारतेन्दु ने आधुनिक हिन्दी-साहित्य का रूपरंग निर्धारित किया। आधुनिक हिन्दी के वे प्रवर्त्तक कहे जाते हैं। उन्होंने अल्पायु में ही १५० से अधिक छोटी-बड़ी रचनाएँ रच दी थीं। उनमें प्रतिभा और शक्ति दोनों थी। उनको जिस वस्तु ने प्रेरणा दी वह थी उनकी समाजोत्थान की अद्भुत भावना। वे राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे। अतीत के गौरव के प्रति इनकी बड़ी ही श्रद्धा थी। भविष्य के सुधार के प्रति इनकी उत्कट इच्छा थी। अतएव इन्होंने अपने साहित्य में इन्हीं पूत-भावनाओं का समावेश किया। इसके पश्चात् श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हमारे सम्मुख राष्ट्रीयता और समाज-सुधार का आकर्षक स्वरूप लेकर आते हैं। वे अतीत के गौरव के समर्थक थे किन्तु नवीन की स्फूर्ति के भी इच्छुक थे। उनके 'प्रियप्रवास' में हम कृष्ण का लोक कल्याणकारी स्वरूप देखते हैं। इन्होंने संस्कृत छंद में सफलता-पूर्वक हिन्दी में कविता की है: इनकी भाषा शैली कठिन तथा सरल दोनों प्रकार की है। 'चुभते चौपदों' में हम इनकी सरल तथा मुहाविरेदार भाषा का सुन्दर प्रमाण पाते हैं। 'हरिऔध' के पश्चात हम गुप्त जी को कविता-क्षेत्र में बड़ी सजधज के साथ आते देखते हैं। इनकी रचना 'भारत-भारती' ने न जाने कितने व्यक्तियों में देशप्रेम की भावना भर दी। जयद्रथ-बध आदि रचनाओं में हम ओज तथा वीर रस की अद्भुत अभिव्यक्ति पाते हैं। गुप्तजी जनता के बीच बड़े व्यापक बन गये। ये पुरातन के प्रति श्रद्धालु और नवीन के प्रति विशेष अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति हैं। नवीन रहस्य-

वाद का भी इन पर प्रभाव पड़ा, जिससे आपने 'झंकार' नामक गीतों का संग्रह रचा। इनके गीत भावना के स्रोत होते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'साकेत' है जिसमें यद्यपि कथा पुरानी है, किन्तु दृष्टिकोण और काव्य-प्रबन्ध नितान्त नया है। इसमें उर्मिला का चरित्र बड़ा मार्मिक और नए दृष्टिकोण से अङ्कित है। यशोधरा में बुद्धकालीन दृश्य उपस्थित करने में भी उन्होंने अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। काव्य-कुशलता की बहुमुखी प्रतिभा तथा समन्वयकारी दृष्टिकोण होने के कारण गुप्त जी आधुनिक काव्यक्षेत्र में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। आपकी भाषा में प्रवाह, ओजस्विकता, प्रसाद गुण और मार्मिकता अधिक मात्रा में मिलती है। आपमें इस युग की जनता की भावनाओं का अभिव्यक्तीकरण पूर्ण रूप से हुआ है। जनता के आप प्रिय कवि हो गए हैं और इनको उससे पर्याप्त प्रसिद्धि दी है।

नवीन धारा

इसके पश्चात् हम आधुनिक हिन्दी-काव्य-धारा में एक नवीन युग का दर्शन करते हैं जिसमें प्रमुख कवि जयशंकर 'प्रसाद', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा और डा० रामकुमार वर्मा आदि हैं। विभिन्नताओं तथा विशेषताओं के लिए यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसमें छायावाद और रहस्यवाद की प्रवृत्तियां प्रधान रूप से देखने को मिलेंगी। प्रायः सभी ने छायावादी प्रवृत्ति को आश्रय दिया है। 'प्रसाद' जी भारत के अतीत के गौरव से अवश्य प्रभावित हैं और इस दृष्टि में केवल—उनके कथानक अति प्राचीत इतिहास की वस्तुएँ हैं। 'कामायनी' उनका एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य है जिसकी मनोहर कल्पना में 'प्रसाद' जी की प्रतिभा सराहनीय है। इसके अतिरिक्त उनके नाटक बौद्ध धर्म के दर्शन से पूर्णतया प्रभावित हैं। गीतों में उनकी भावनाओं और कल्पनाओं की उड़ान

देखने योग्य है। 'निराला' जी तो इस युग के महान् प्रवर्त्तक हैं। उनके विचार से कवि को सीमा के अन्तर्गत करना सम्भव नहीं है। वे मुक्त काव्य, मुक्त छन्द, मुक्त विचार-धारा और मुक्त काव्यशैली के प्रबल समर्थक हैं। इन्होंने 'परिमल', 'तुलसीदास', तथा अन्य कितने ही सुन्दरतम काव्य लिखकर आज के मानव को तुष्ट किया हैं। इनके भावों की बहुलता, भाषा की ओजस्विकता और प्रवाह देखने योग्य है। 'निराला' जी सचमुच इस नवीन धारा के प्रवर्त्तक हैं। मुक्त छन्द की धारा इन्हीं ने प्रसारित की। इस युग के कवियों ने 'निराला' जी से निरन्तर प्रेरणा पाई है। इसके पश्चात् हमें एक कोमल और सुकुमार कवि 'पन्त' के दर्शन होते हैं। ये कल्पना, भावना, छन्द, गीत, शब्द योजना, शैली और व्यक्तित्व में अति सरल, कोमल और नव किसलय जैसी सुकुमारता से आपूर्ण हैं। प्रकृति के समीपस्थ इनकी काव्य-साधना ने जन्म लेकर इन्हें और भावनाशील बना दिया है। इनके 'पल्लव', 'वीणा', 'गुंजन', 'परिवर्तन', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', में हमें इनकी कविता का सुन्दर परिचय मिलता है। 'परिवर्तन' में हमें इनकी सारी प्रतिभा का दर्शन एक साथ पाते हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा शुद्ध रहस्यवाद की प्रतिमा हैं। नीहार, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा आदि उनकी कविता के अनूठे संग्रह हैं। उनकी कविता करुणा के प्रवाह को लेकर चलती है। करुण रस की वे सबसे अधिक सफल कवयित्री हैं। श्री रामकुमार वर्मा की कविता में शुद्ध रहस्यवाद के सिद्धान्त अधिक रूप से मिलेंगे। कल्पना और अनुभूति में ये विशुद्ध रहस्यवाद के कवि ज्ञात होते हैं। इनके संग्रह 'निशीथ', चन्द्रकिरण, रूपराशि और संकेत हैं।

राष्ट्रीय धारा

इनके साथ ही साथ हमें एक शुद्ध राष्ट्रीय परम्परा के कवि और दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें श्री माखनलाल चतुर्वेदी और 'दिनकर' मुख्य

हैं। इन कवियों ने राष्ट्रीय किसान आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन, अछूतोद्धार, सत्याग्रह आदि राष्ट्रीय जागरण के प्रसंगों से प्रेरणा पाई है। राष्ट्रीय जागरण में ये दोनों कवि निसंदेह अपना स्थान रखते हैं; इनकी कवीता में ओज, वीररस, प्रभाविकता, दृश्य उपस्थित करने की शक्ति और जनता को मनोमुग्ध कर देने की अपूर्व प्रतिभा हैं। इनकी रचनाएँ त्रिधारा, हिमकिरीटनी और रेणुका, हुङ्कार, रसवंती और द्वन्द्वगीत क्रमशः हैं।

इस प्रकार हम हिन्दी में कविता का एक सुन्दर विकास पाते हैं। यह विकास निर्गुणधारा, सगुणधारा, रीतिकालीन युग, आधुनिक पुरानी धारा, नवीन धारा और राष्ट्रीय धारा नामक सोपानों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हिन्दी के वर्त्तमान कवि विकास के विविध पथों पर प्रगतिशील हैं जिससे कविता का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल दिखाई पड़ता है।

१—निर्गुण-धारा

प्रमुख कविः—

कबीर और जायसी

विशेषताएँ

(१) दोनों कवियों का चिन्तन-विषय निर्गुण और एकेश्वरवाद की महत्ता और गुरु की आवश्यकता थी।

(२) कबीर अद्वैतवाद तथा नाथ संप्रदाय द्वारा प्रभावित रहे, अतः सबद, सुरति, निरति और लौ की भक्ति की ओर प्रेरित हुए। जायसी सूफी-मत से पूर्ण प्रभावित रहे अतएव प्रेम की पीर का प्रचार किया।

(३) कबीर ने काव्य-रचना साखी, पद, दोहा तथा उलट-वासियों में की और खंडनात्मक प्रवृत्ति दिखाई। जायसी ने काव्य की रचना दोहा, चौपाइयों में करके संयोजनात्मक (प्रेम की मनोरंजक अभिव्यंजना) प्रवृत्ति दिखाई।

(४) कबीर की भाषा मिश्रित (सधुक्कड़ी) और रूपकों का बाहुल्य तथा जायसी की भाषा साहित्यिक, अवधी और शैली प्रबन्धात्मक थी।

(५) दोनों ने समाज की कृत्रिमता ऊँच-नीच, कट्टरता आदि दोषों के निवारण का प्रयत्न किया।

प्रमुख ग्रन्थ

कबीर की साखियाँ, पद, उलटवासियाँ जिनका संग्रह बाद में हुआ।
जायसी—पद्मावत, अखरावट और आखिरी-कलाम।

सन्त कबीर

जीवन-परिचय

भारतीय कवियों का जीवन-वृत्त पाना प्रायः संभव नहीं रहा है। उन्होंने अपने विषय में लिखना कभी अभीष्ट नहीं समझा। उनके सम्मुख 'स्वान्तः सुखाय' तथा 'धर्मनिष्ठता' की भावनाएँ इतनी प्रबल थीं कि उन्होंने अपनी सत्ता का अहंकार कभी प्रदर्शित नहीं किया। संत कबीर भी इस परम्परा के अपवाद नहीं हैं। उनकी तथा उनके भक्तों की रचनाओं में यत्र-तत्र कुछ पंक्तियाँ मिल जाती हैं जिससे उनका जीवन-वृत्त विद्वानों द्वारा बुना गया है।

कबीर के जन्म के सम्बन्ध में 'कबीर चरित्र बोध' तथा उनके अनुयायियों में यह दोहा प्रचलित है,—

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

इस प्रकार इनका जन्म सं० १४५५ अर्थात् सन् १३९८ ई० में हुआ था। इसी प्रकार इनकी मृत्यु-तिथि के विषय में यह दोहा प्रचलित है :—

संवत पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रल्यौ पौन में पौन॥

इस प्रकार उनकी मृत्यु सन् १५१८ ई० में हुई। अर्थात् उनकी कुल आयु १२० वर्ष की रही होगी जो कबीर जैसे संयमी और सन्तोषी व्यक्ति के लिए असम्भव नहीं। संत कबीर का जन्म काशी में हुआ था या मगहर में—यह भी विवादग्रस्त है। दोनों प्रकार के उल्लेख मिलते हैं—(१) काशी में हम प्रकट भए हैं, रामनन्द, चेताए।

(२) 'पहले दरसन मगहर पाइओ
पुनि कासी बसे आई।'

प्रथम उक्ति उस जनश्रुति को पुष्ट करती है जिसके अनुसार वे एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे और लहरतारा तालाब में नीरू और नीमा जुलाहे दम्पति द्वारा पाए गए और पालित-पोषित किए गए। चाहे उनका जन्म मगहर में हुआ हो अथवा काशी में, किन्तु यह निर्विवाद है कि उनका बाल्यकाल तथा जीवन का अधिकांश समय काशी में ही बीता। "बारह बरस बालपन बीतो—बरस बीस कछु तप न किओ।" 'हम घर सूत तनहिं नित ताना।' 'तू बाम्हन मैं काशी का जुलाहा।' 'तनना प्रभु तजिओ कबीर, हरि का हरसि गुन रमै कबीर॥' काशी में वे रहे और उनका व्यवसाय जुलाहे का ही था। वे सद्गृहस्थ थे। उनकी स्त्री का नाम लोई प्रसिद्ध है। "कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम बनसि रहेगा सोई।" "सुनि अन्धली लोई बेपीर॥" कबीर की संततियों में एक पुत्र और पुत्री थी जिनके नाम क्रमशः कमाल और कमाली कहे जाते हैं :—'बूड़ा बंस कबीर का उपज्यो पूत कमाल।' 'बिटवहिं राम रमउवा लावा।'

कबीर पढ़े-लिखे न थे किन्तु उन्होंने पर्यटन किया था। साधु-संग, अनुभव तथा आन्तरिक सूझ ने उन्हें सन्त और कवि दोनों बना दिया था। "मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हाथ; चारिउ जुग का महातम कबिरा मुखहिं जनाई बात?" "हज हमार गोमती तीर बिदिया न पढ़ेउ बादु नहीं जानिउ।"

कबीर प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। प्रभु-भजन की लौ लगते ही उपदेश की ओर झुक पड़े। किन्तु प्रचलित प्रथा के अनुसार गुरु न होने के कारण लोगों ने इन्हें 'निगुरा' कहना प्रारम्भ कर दिया। अतएव अपने नगर काशी के प्रसिद्ध पण्डित और भक्त रामानन्द की दीक्षा लेने का संकल्प किया। जनश्रुति में यह कथा अति प्रसिद्ध है कि उन्होंने किस प्रकार स्वामी रामानन्द को अपना गुरु बनाया। "काशी में हम

प्रगट भए हैं रामानन्द चिताए।" "हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ। सतगुरु की किरिपा भई, सिर तें उतर्‌या बोझ॥" "गुरु प्रसाद सूई कै नाकें, हस्ती आवें जाहिं" आदि से स्पष्ट है कि वे गुरु की महिमा को अत्युत्कृष्ट मानते थे। कितने ही अन्य लेखों से भी यह प्रकट है कि वे स्वामी रामानन्द के अति प्रिय शिष्य थे।

ऐसा ज्ञात होता है कि कुछ समय पर्यन्त उन्होंने साधु सत्संग और भजन, उपदेश में ही अपना सारा समय व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया था। घर का काम-काज भी छोड़ दिया था। "मुसि मुसि रोवै कबीर की माई।" "ताना-बाना कछू न सूझै, हरि हरि रस लपटाओ॥" "जब की माला लई निपूते, तब तें सुखू न भइओ। नित उठ कोरी गागरि आनै, लीपत जोउ गाइओ॥" कबीर ने सारा जीवन लोगों को सत्पथ दिखाने में बिताया। अन्ध-विश्वास को दूर किया। धार्मिक कट्टरता को कोसा, सहज मार्ग का दर्शन कराया। अन्त समय भी अपने जीवन के अटल सिद्धान्तों की रक्षा की। "काशी में मरने से मुक्ति होती है और मगहर में नरक मिलता है", नामक अन्ध-विश्वास को तोड़ते हुए उन्होंने कहा था, "जो काशी तन तजै कबीरा, तो रामहिं कहा निहोरा रे।" "सगरो जनम शिवपुरी गवाइया। मरती बार मगहर उठि आइआ।" यह निश्चित है कि इनकी मृत्यु मगहर में ही हुई। 'काशी मगहर सम बिचारो' का उपदेश देते कबीर ने शरीर त्याग किया।

काव्य के क्षेत्र में कबीर

पृष्ठभूमि:—प्रत्येक कवि के काव्य पर उसकी तत्कालीन सामाजिक परम्परा और वातावरण का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ता है। कबीर जब भारतीय भूमि पर अवतरित हुए तो सम्पूर्ण उत्तरभारतीय मण्डल बौद्धधर्म के अन्तिम सिद्धों और नाथपंथी योगियों की विचार धारा से आपूर्ण था। हिन्दू धर्म की बाह्य उपासनाएँ जीवित थीं। बौद्ध धर्म की

निर्गुण उपासना साधारण समाज से दूर पहुँचे हुए सन्त, महात्माओं के पास 'रहस्य' के रूप में जा छिपी थी। इधर मुसलमानों के आगमन से एकेश्वरवाद का नारा पुनः गूँजने लगा था। हिन्दुओं की कट्टर वर्ण-व्यवस्था ने ऊँच-नीच जातियों की सृष्टि कर दी थी। अतएव इस समय निर्गुण ब्रह्मोपासना की धारा बलवती-सी दिखाई दे रही थी। राजनैतिक क्षेत्र विशेष विक्षुब्ध था। मुसलमानी धर्म को हिन्दू धर्म न पचा पाया, क्योंकि एक तो वह अपनी एकता आन्तरिक रूप से खो चुका था और द्वितीय यह नवागत धर्म राजसत्ता के बल पर अग्रसर हो रहा था। इस प्रकार भारतीय चिन्तना का स्तर नितान्त अस्थिर था। विद्या-बुद्धि से शून्य जनता को सही मार्ग दिखलाने का प्रयत्न कबीर के हाथों आया। कबीर को ऐसा लगा कि विद्वान् और मूर्ख दोनों ही गलत मार्ग पर हैं। उन्होंने परम्परागत पदों, रागों, रागनियों, दोहों, साखी, चौपाइयों, उलटवाँसियों के द्वारा प्रतिष्ठित गुरु की महिमा स्थापित करते हुए समाज में समता और एकेश्वरवाद का सिद्धान्त पुष्ट किया। छुआ-छूत, ऊँच-नीच, बहुदेववाद तथा नाना मतों का तीव्र खण्डन किया। धार्मिक कट्टरता का प्रबल विरोध किया। समाज में समानता का भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया।

कबीर की देन

अनुभवगत सत्यकथन में जितनी स्पष्ट उक्ति कबीर की है उतनी अन्यत्र मिलनी कठिन है। कबीर सत्यानुसंधानी प्रथम थे। कविता तो उनका साधन था। जीवन का बाह्याडम्बर तो उन्हें तनिक न रुचता था। ईश्वरसम्बन्धी भाव कबीर के सर्वोत्तम हैं। अधार्मिक भावों की कट्टरता का विरोध उनका सबसे अधिक कटु है। अतएव कबीर के जीवन का एक बहुत बड़ा उद्देश्य था जिसने भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप की उस गाढ़े समय में रक्षा की। धर्मगत, जातिगत तथा अन्धविश्वासगत बढ़ती हुई कट्टरता पर कबीर के कठोर कोड़े ने जादू जैसा कार्य किया। यह कबीर की ही देन थी कि अव्यवस्थित धर्म-परम्परा में 'सन्तमत' नाम की धारा बह निक ली

जिसमें रैदास, दादू, धन्ना, सेना, पीपा, सुखानन्द, परमानन्द आदि अनेक महात्मा हुए जिन्होंने अपनी अमृतवाणी से न जाने कितनी भारतीय जनता के प्यासे कण्ठ को सींचा।

भाषा तथा शैली

कबीर की भाषा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार 'सधुक्कड़ी' ही कही जा सकती है। उसमें अधिकांश शब्द पूरबी उत्तर प्रदेश के हैं। इसके अतिरिक्त पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, मारवाड़ी, राजस्थानी, अवधी और बिहारी के शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। विस्तृतदेशीय साधु सत्संग के कारण उनकी भाषा अवश्य खिचड़ी हो गई, किन्तु साहसी कबीर के साहसपूर्ण कथनों को व्यक्त करने में वह बड़ी ही प्रबल कही जानी चाहिए। उनकी भाषा उनकी खण्डनात्मक वृत्ति में विशेष सहायक हुई।

कबीर ने दोहों, साखियों, पदों, और उलटवाँसियों में अपने विचार व्यक्त किए है। अलंकार तथा रूपक स्वाभाविकता तथा रहस्ययुक्त रूप से आए हैं। उनकी शैली उनके लिए कष्टसाध्य न थी, क्योंकि कविता उनके लिए बन्धन का स्वरूप न थी, वरन् स्वभावगत उक्ति ही उनकी कविता बन गई। अतएव शुष्कता, अक्खड़पन, अपरिमार्जित, पिंगलविहीन भाषा होते हुए भी कबीर की निर्भीक वाणी हृदय को छूती है और मन में आनन्द उपजाती है। कबीर के वचन उनके भक्तों ने एकत्रित किये थे, अतएव उनमें बढ़ती होती ही रही, इसलिए कबीर के वास्तविक वचनों की समालोचना करना और भी कठिन हो गया।

समीक्षक

रहस्यवादी कवियों में कबीर का आसन सबसे ऊँचा है। शुद्ध रसस्यवाद तो केवल उन्हीं का है। तुलसी को छोड़कर हिन्दी-

भाषी जनता पर कबीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।"

—बाबू श्यामसुन्दर दास

"कबीर मस्तमौला थे। जो कुछ कहते थे साफ कहते थे। कविता उनका लक्ष्य नहीं था फिर भी उनकी उक्तियों में कवित्व की ऊँची चीज प्राप्य है। वे साधक के क्षेत्र में युग-गुरु थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्य के स्रष्टा। संस्कृत के 'कूपजल' को छुड़ाकर उन्होंने भाषा के बहते नीर में सरस्वती को स्नान कराया।"

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

"इनके से बेधड़क कहने वाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। इनका अनुभय बहुत बड़ा और दृष्टि अत्यन्त पैनी थी। आपकी रचना तथा जीवन की सर्वोत्कृष्ट बातें हिन्दू-मुसलमानों को मिलाने के प्रयत्न हैं।"

—मिश्रबन्धु

कबीर की साखी

गुरु गोविन्द दोऊ, खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु, आपने, गोविन्द दियो बताय ॥१

साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥२

जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिनु प्रान ॥३

जाति न पूछौ साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करौ तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४

साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ॥५

केसन कहा बिगारिया, जो मूड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये, जामे विषै विकार ॥६

कबिरा संगत साध की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि ॥७

माटी कहै कुम्हार सों, तू कित रूँदै मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥८

चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइ के, साबित बचा न कोय ॥९

या दुनियाँ में आइ के, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना है सो लेइले, उठी जात है पैंठ ॥१०

लघुता से प्रभुता मिलै, प्रभुता से प्रभु दूरि।
चींटी लै सक्कर चली, हाथी के सिर धूरि ॥११

कबिरा सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥१२

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार ॥१३

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाहिं ॥१४

'कबीर' माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणा, कहा फिरावै मोहि ॥१५

मूड़ मूँड़ाये हरि मिलें, सब कोइ लेय मुड़ाय।
बार बार के मूँड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥१६

चाह मिटी चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, तेई साहंसाह ॥१७

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१८

न्हाये-धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय ॥१९

उत तें कोई न आवई, जासों पूछूँ धाइ।
इत तें सबही जात हैं, भार लदाइ लदाइ ॥२०

संत न छाँड़ै संतई, कोटिक मिलैं असंत।
चँदन भुजंगम बैठिया, शीतलता न तजंत ॥२१

कबिरा घास न निंदिये, जो पावों तर होय।
उड़िके परै जो आँखि में, खरा दुहेला होय ॥२२

पपिहा पन को ना तजै, तजै तो पन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥२३
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटे उँजेरा होय ॥२४

माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
मनका मनका डार दे मनका मन का फेर ॥२५

हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखकर, भये कबीर उदास ॥२६

झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल को, कुछ मुख में कुछ गोद ॥२७

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात ॥२८

माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुन लिये, काल्हि हमारी बार ॥२९

छाया माया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पीछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥३०

कबीर के पद

बहुरि नहिं आवना या देस।
जो जो गये बहुरि नहिं आये पठवत नहिं सन्देस।
सुर नर मुनि औ पीर औलिया देवी देव गनेस॥
धरि-धरि जनम सबै भरमे हैं, ब्रह्मा विष्णु महेस।
जोगी जंगम औ संन्यासी दीगम्बर दरवेस॥
चुंडित मुंडित पण्डित लोई सरग रसातल सेस।
ज्ञानी गुनी चतुर औ कविवर राजा रंक नरेस॥
कोइ रहीम, कोइ राम बखानै कोई कहे आदेस।
नाना भेष बनाया सब मिलि ढूँढ़ि फिरे चहुँदेस॥
कहें कबीर अन्त ना पैहो बिन सतगुरु-उपदेस।

साधो एक रूप सब माहीं।
अपने मनहि विचारि के देखो और दूसरा नाहीं।
एकै तुचा रुधिर पुनि एकै, विप्र सूद्र के माँहीं,
कहीं नारि, कहिं नर होइ बोलें, गेव पुरुष वह आहीं।
आये गुरु दोइ मन्त्र देत हैं सिख होइ सबै सुनाहीं;
जो जस गहै, लहै तस मारग, तिनके सतगुरु आहीं।
शब्द पुकार सत्त मैं भासौं, अन्तर राखौ नाहीं;
कहै कबीर ज्ञान जेहि निर्मल, बिरलै लखाहीं॥

कबीर की उलटबाँसियाँ

अवधू सो जोगी गुरु मेरा, जो या पद का करै निबेरा॥टेक॥
तरवर एक पेड़ बिन ठाड़ा, बिन फूलों फल लागा॥
साखा पत्र कछू नाहि वाकै, अस्ट गगन मुख बागा॥
पैर बिन निरति करौं बिन बाजै, जिभ्या हीणाँ गावै।
गावणहारे के रूप न रेखा, सतगुर होइ लखावै॥

पंखी का खोज मीन का मारग, कहैं कबीर बिचारी।
अपरम्पार पार परसोत्तम, वा मूरति की बलिहारी॥

माधव जल की पियास न जाइ।
जल महि अवनि उठी अधिकाइ॥
तूँ जलनिधि हऊँ जल का मीनू।
जल नहिं रहउ जलहि बिनु खीनू॥
तूँ पिंजरु हउँ सूअटा तोर।
जमु मंजारु कहा करै मोर॥
तूँ तरवरु हऊँ पंखी आहि।
मन्दभागी तेरो दरसनु नाहिं॥
तूँ सतिगुरु हऊँ नउतनु चेला।
कहि कबीर मिलु अन्त की बेला॥

जायसी

कवि-परिचय

आपका पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। इनकी एक पुस्तक 'आखिरी कलाम' की एक पंक्ति से यह सिद्ध होता है कि इनका जन्म ६०० हिजरी में अर्थात् सन् १४६२ ई० के लगभग हुआ था। 'भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी॥" ३० वर्ष बाद ये सुन्दर कविता करने लगे होंगे। जायसी की अन्य दो पुस्तकें 'अखरावट' और 'पद्मावत' हैं। 'पद्मावत' का रचना-काल कवि ने ६२७ हिजरी अर्थात् १५२० ई० के लगभग दिया है। यह ग्रन्थ कवि की सर्वोत्कृष्ट रचना है। ऐसा ज्ञात हुआ हैं कि जायसी ने 'पद्मावत' की रचना पहिले जायस में रह कर के ही की थी। किन्तु वे कुछ समय के लिए जायस से चले गए। अंत में फिर जायस लौटकर आए तब इन्होंने इस ग्रन्थ को पूरा किया। 'जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू॥"

जायसी का शरीर कुछ विकृत था। एक आँख खराब हो गई थी। "एक नयन कवि मुहमद गुनी।" "मुहमद बाँई दिसि तजा।" एकबार जब शेरशाह ने उन्हें देखा तो हँस पड़ा। उसको ऐसा करते देख उन्होंने शान्त भाव से कहा—"मोहि का हँसेसि, कि कोहरहि?" इस पर शेरशाह बहुत लज्जित हुआ और क्षमा माँगी।

जायसी स्वभाव के बड़े सरल और भोले थे। ईश्वर-भक्ति और साधु-सत्संग के बड़े प्रेमी थे। सैयद पीर इनके गुरु थे। ये एक उत्कृष्ट सूफी संत थे। जायसी हिन्दू-मुसलमान सभी साधुओं से सत्संगत करते थे। उन्हीं से उन्होंने हिन्दू धर्म की कितनी ही जानकारी प्राप्त की थी।

जायसी पुत्रों की अकाल मृत्यु होने से अति विरक्त हो गए। उन्होंने दूर-दूर तक पर्यटन किया और अपना अनुभव बढ़ाया। अमेठी के राजा रामसिंह की उनपर बड़ी श्रद्धा थी। जीवन के अन्तिम दिनों में जायसी अमेठी के पास जंगल में रहने लगे। वहीं एक बार दैवयोग से एक शिकारी की गोली से इनका देहावसान हो गया। इनका मृत्यु-काल ४ रजब ९४९ हिजरी अर्थात् सन् १५४२ ई० दिया है।

काव्य के क्षेत्र में जायसी

अब तक कबीर को हुए लगभग सौ बरस हो चुके थे। कबीर की कटु उक्तियों ने हिन्दू-मुसलमानों की कट्टरता को पर्याप्त कम कर दिया था। 'सन्त मत' के प्रबल प्रचार ने साधारण जनता के बीच राम और रहीम को काफी पास ला दिया था। साधारण जनता में हिन्दू व मुसलमान साधुओं का सम्मान सर्वत्र एक-सा होने लगा था। हृदय के पास आते हुए इस खिंचाव को सूफियों के प्रेममार्ग ने और भी मिला दिया। भारतीय साधारण जनता का स्तर अधिक सरस और स्नेहयुक्त करने में सूफी सम्प्रदाय अधिक सफल रहा। इन्हीं में से हमारे सम्माननीय कवि जायसी थे।

जायसी सूफी मत के दृढ़ अनुयायी थे। सूफीमत भारतीय अद्वैतवाद से मिलता-जुलता ही था। जायसी ने इस परिस्थिति विशेष में बड़ी दूरदर्शिता का कार्य किया। उन्होंने अपने मत का पुष्ट प्रतिपादन तो अवश्य किया, किन्तु उसका माध्यम या साधन हिन्दू धर्म के परम्परागत कथानकों को बनाया, जिनके प्रति साधारण जनता में पहिले ही राग और प्रेम स्थापित था। 'पद्मावत' उनका सर्वोत्तम प्रबन्ध काव्य है। उसकी कथा शुद्ध हिन्दू-कथा है। पद्मावती का जन्म, हीरामन सुवा का संलाप, रतनसेन के पास हीरामन का जाना, रतनसेन से पद्मावती का रूप दर्शन करना, रतनसेन का योगी बनकर घर से चल देना···से लेकर चित्तौड़गढ़

पर मुसलमानों का अधिकार होने तक की कथा का ऐसे सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है कि प्रबन्ध काव्य के सारे उत्तम गुण उसमें विद्यमान हैं। इस प्रबन्ध काव्य में तत्कालीन समाज के हठयोगियों की परम्परा हमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसके वर्णन अति रुचिकारक हैं। रस, अलंकारों का समुचित प्रयोग इसमें मिलेगा। विभिन्न पात्रों के स्वभाव-चित्रण में कवि सफल हुआ है। कथानक के अन्त में जायसी ने अपने मत-प्रतिपादन का सारांश दिया है जो देखने योग्य है :—

चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुस के घट माँही॥
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निर्गुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलादीन सुल्तानू॥
प्रेमकथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु॥

सारे प्रबन्ध काव्य में प्रेम की विशुद्ध भावना, मार्मिक भाव-व्यंजना, वर्णन की सुन्दरता और ठेठ अवधी भाषा का माधुर्य देखने योग्य है।

मुसलमान कवि होने के नाते कहीं-कहीं पुनरुक्ति दोष, अरोचकता, न्यूनपदत्व आदि दोष अवश्य आगए हैं, किन्तु उनसे प्रबन्ध काव्य की उत्तमता में विशेष कमी नहीं पड़ती है। जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। सारा प्रबन्ध काव्य चौपाई और दोहों द्वारा वर्णित है। प्रत्येक सात चौपाइयों के बाद एक दोहा आता है। 'रामचरितमानस' के पश्चात् अन्य प्रबन्ध काव्यों में यह सर्वोत्तम है।

समालोचक

"भारतीय काव्य-साधना में प्रेम की उत्कृष्ट तन्मयता तथा विरह का वर्णन करने में ये कमाल करते हैं। ये कथा कथा के

लिए नहीं कहते। इनका लक्ष्य सदा भगवत्प्राप्ति रहता है। 'प्रेम की पीर' पद्धति वाले कवियों में सर्वश्रेष्ठ पद्मावतकार मलिक-मुहम्मद जायसी हैं।"

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

"प्रेम गाथा की परम्परा के भीतर जायसी का नम्बर सबसे ऊँचा ठहरता है। 'पद्मावत' हिन्दी-साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुल्क।

पद्मावत

राजा-सुआ-संवाद

राजै कहा सत्य कहु सूआ। बिन सत जस सेंवर कर भूआ॥
होइ मुख रात सत्य के बाता। जहाँ सत्य तहँ धरम सँघाता॥
बाँधी सिहिट अहै सत केरी। लछिमी अहै सत्य कै चेरी॥
सत्य जहाँ साहस सिधि पावा। औ सतवादी पुरुष कहावा॥
सत कहँ सती सँवारे सरा। आगि लाइ चहुँ दिसि सत जरा॥
दुइ जग तरा सत्य जेइ राखा। और पियार दइहि सत भाखा॥
सो सत छाँड़ि जो धरम बिनासा। भा मतिहीन धरम करि नासा॥
तुम्ह सयान और पंडित, असत न भाखहु काउ।
सत्य कहहु तुम मोसौं, दहुँ काकर अनियाउ॥ १॥
सत्य कहत राजा गिउ जाऊ। पै मुख असत न भाखौं काऊ॥
हौं सत लेइ निसरेउँ एहिं बूते। सिंघल दीप राजघरहूँ ते॥
पदमावति राजा कै बारी। पदुम-गंध ससि विधि औतारी॥
ससि मुख, अङ्ग मलयगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी॥
अहैं जो पदमिनि सिंघल माहाँ। सुगंध रूप सब तिन्हकै छाहाँ॥
हीरामन हौं तेहिक परेवा। कंठा फूट करत तेहि सेवा॥
औ पाएउँ मानुष कै भाषा। नाहिं त पंखि मूठि भर पाँखा॥
जौ लहि जिऔं राति दिन, सँवरौं ओहि कर नाँव।
मुख राता, तन हरियल, दुहूँ जगत लइ जाँव॥ २॥
हीरामन जो कँवल बखाना। सुनि राजा होइ भँवर भुलाना॥
आगे आव, पंखि उजियारा। कहँ सो दीप पतंग कै मारा॥
अहा जो कनक सुबासित ठाऊँ। कस है होई हीरामन नाऊँ॥
को राजा कस दीप उतंगू। जेहि रे सुनत मन भयए पतंगू॥

सुनि समुद्र भा चख किलकिला। कवँलहि चहौं भँवर होइ मिला॥
चहु सुगंध धनि कस निरमली। भा अलि-संग कि अबहिं कली?॥
औ कहु तहँ जहँ पदमिनि लोनी। घर घर सबके होइ जो होनी॥

सबै बखान तहाँ कर, कहत सो मो सो आव।
चहौं दीप वह देखा, सुनत उठा अस चाव॥ ३॥

का राजा हौं बरनौं तासू। सिंघल दीप आहि कैलासू॥
जो गा तहाँ भुलाना सोई। गा जुग बीति न बहुरा कोई॥
घर घर पदमिनि छतिसौ जाती। सदा बसंत दिवस औ राती॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी। तेहि तेहि बरन सुगंध सो नारी॥
चहूँ खंड के बर जो ओनाहीं। गरबहिं राजा बोलै नाहीं॥

उअत सूर जस देखिये, चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसै सबै जाँहि छपि, पद्मावति के रूप॥ ४॥

सुनि रबि-नाँव रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता॥
तैं सुरंग मूरति वह कही। चित मँह लागि चित्त होइ रही॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी॥
अब हौं सुरुज चाँद वह छाया। जल बिनु मीन, रकत बिनु काया॥
किरिन-करा भा प्रेम अँकूरू। जौं ससि सरग, मिलौं होइ सूरू॥
सहसौ करा रूप मन भूला। जहँ जहँ दीठ कवँल जनु फूला॥

तीन लोक चौदह खँड, सबै परै मोहिं सूझि।
पेम छाँड़ि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझि॥ ५॥

पेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन पेम सिर देइ तौ छाजा॥
पेम-फाँद जो परा न छूटा। जीउ दीन्ह पै फाँद न टूटा॥
गिरगिट छंद धरै मुख तेता। खन खन पीत, रात, खन सेता॥
जान पुछार जो भा बनवासी। रोवँ रोवँ परे फँद नगवासी॥
पांखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू। उड़ि न सकै, अरुझा भा बाँदू॥
'मुयों मुयों' अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई॥
पंडुक, सुआ, कंक वह चीन्हा। जेहिं गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥

तीतिर-गिउ जो फाँद है, नित्ति .पुकारै दोख।
सो कित हँकारि फाँद गिउ (मेलै) कित मारे होइ मोख ॥ ६ ॥

राजै लीन्ह ऊबि कै साँसा। ऐस बोल जिनि बोलु निरासा ॥
भलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जहि खेला ॥
दुख भीतर जो पेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा ॥
जो नहिं सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा? ॥
अब मैं पेम-पन्थ सिर मेला। पाँव न ठेलु, राखु कै चेला ॥
पेम-बार सो कहै जो देखा। जो न देख, का जान बिसेखा? ॥
तौ लगि दुख पीतम नहिं भेंटा। मिलै, तौ जाइ जनम-दुख मेटा ॥

जस अनूप तू बरनेसि, नखसिख बरनु सिंगार।
है मोहिं आस मिलै कै, जौं मेरवै करतार ॥ ७ ॥

२—सगुण धारा के कवि

प्रमुख कवि

सूरदास और तुलसीदास

विशेषताएँ

(१) दोनों भक्त कवियों का उद्देश्य निर्गुण का खंडन तथा साकार ईश्वरोपासना की पद्धति की स्थापना करना था। साकारोपासना के आधार पर समाज के सम्मुख लोकरंजनकारी तथा लोककल्याणकारी स्वरूपों की साहित्य द्वारा सृष्टि की।

(सूर ने श्रीकृष्ण का प्रेम और वात्सल्य भरा-लोकरंजनकारी स्वरूप-स्थापित किया और तुलसी ने भगवान् राम का लोक-हितकारी आदर्श उपस्थित किया।)

(२) सूर की साधना सख्य भाव की, तुलसी की दास्य भाव की; सूर की शैली 'गीत पद्धति' पर, 'तुलसी की शैली सभी प्रचलित पाँच शैलियों पर; सूर की भाषा 'ब्रजभाषा' और तुलसी की भाषा ब्रज और अवधी दोनों थी।

(३) सूरदास कृष्णोपासक कवियों में सर्वश्रेष्ठ थे। सूर के काव्य की प्रवृत्ति प्रेमजन्य शृङ्गार और वात्सल्य रसों के उद्रेक में थी। तुलसीदास ने प्रायः सभी रसों में अद्भुत काव्य-कुशलता का परिचय दिया।

(४) सूर का प्रभाव कविता और जनता की एक दिशा में अद्वितीय रहा, किन्तु तुलसीदास का प्रभाव कविता और जनता की सभी दिशाओं में पूर्ण व्याप्त और अद्वितीय रहा।

(५) दृष्टि-विस्तार और दृष्टि-समन्वयता के कारण तुलसीदास हिन्दी-साहित्य से सर्वोच्च माने जाते हैं।

प्रमुख ग्रन्थ

सूरसागर, रामचरित-मानस, विनयपत्रिका, गीतावली आदि।

महात्मा सूरदास

जीवन-परिचय

महात्मा सूरदास का जन्म संवत् १५२० विक्रमी माना जाता है। 'सूरसारावली' जो उन्हीं की रचना मानी गई है उसमें ये पंक्तियाँ उनकी अवस्था का पर्याप्त अनुमान लगाती हैं:—"गुरू प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ वर्ष प्रवीन। सिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन॥" इस प्रकार बाबू राधाकृष्णदास का कथन ठीक ज्ञात होता है कि वे कम से कम ८० वर्ष जीवित रहे। चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अनुसार उनकी जन्मभूमि मथुरा और आगरा के बीच रुकनता नामक गाँव में मानी जाती है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग इन्हें चंदबरदाई के वंशजों में मानते हैं। ये ७ भाई थे, जिनमें छः तो युद्ध में मारे गए। ये अकेले ही बचे। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि यह जन्मान्ध थे और कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं। जो भी हो, महात्मा सूरदास तो जनश्रुति में अन्धे ही माने गए हैं। टीका भक्तामाल के अनुसार इनके पिता का नाम रामदास था। ये बालकपन से ही गऊघाट नामक स्थान पर रहने लगे थे। वहीं महाप्रभु वल्लभाचार्य से गुरु-दीक्षा ली। तबसे जीवन-पर्यन्त इन्होंने कृष्ण-भक्ति की और कृष्णानन्द में मगन रहे।

धीरे-धीरे सूरदास की प्रतिभा जगी। कहा जाता है कि उन्होंने सवा लाख पद रचे जो 'सूर सागर' कहलाया, किन्तु अब तो इनमें से ५, ६ हजार ही उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि इनके पाँच स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं:—सूरसागर, सूर सारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती और ब्याहता। इनमें से पश्चात् के दो ग्रन्थ अप्राप्य हैं। सबसे अधिक जनप्रिय और विशद ग्रन्थ इनका 'सूरसागर' ही है।

काव्य में सूरदास

भारतीय जनता का धार्मिक स्तर जो सदियों से सगुणोपासना से अभिषिक्त हुआ था उस पर 'निर्गुनिए' सन्तों का उपदेश स्थायी रूप धारण न कर सका। थोड़े समय के लिए तो समाज पर एक धक्का लगा, किन्तु वह धक्का समाज में क्रान्तिकारी युग न ला सका। इसके अतिरिक्त साधारण जनता—जिसका बौद्धिक स्तर काफी नीचे पर स्थित था—यह चाहती थी कि धर्म के सम्पर्क में उसे ऐसे मुक्तिदाता का आश्रय मिले जिसके साथ वह बोल सके, रह सके, खेल सके, सुख-दुःख कह सके और पार्थिव स्तर पर तादात्म्य सम्बन्ध स्थिर कर सके। ध्यान, सुरति, लौ, अनहद नाद, ब्रह्मरन्ध की आकाशी बातें जनता को आश्चर्यान्वित तो कर सकीं, किन्तु उनके जीवन की उपयोगी वस्तु न बन सकीं। उनमें लोक-जीवन की कोई प्रेरणा न थी। अतएव 'निर्गुन धारा' की भूमि दृढ़ न बन पाई और जनता ने पुनः सगुणोपासकों की बातें सुनना प्रारम्भ कर दिया। राजनीतिक दासता ने और भी हिन्दुओं को इस ओर प्रेरित किया जिधर उनको भगवद्-भक्ति के मनोरंजक स्वरूप का दर्शन मिला और अपनी धार्मिक भावनाओं को तृप्त करने, संरक्षित करने और अभिवृद्ध करने का सुअवसर मिला। इस प्रकार भारतीय जनता का वातावरण महात्मा सूर जैसे अखण्ड सगुणोपासक के लिये नितान्त उपयुक्त था। ऐसे समय में ही सूर की अमर वाणी प्रादुर्भूत हुई जिसने भारतीय हृदय में पुनः स्नेह और आशा की अविरल धारा बहा दी।

सूरदास परम सगुणोपासक थे। श्रीकृष्ण-भक्ति में निमग्न रहना ही उनके जीवन का परमोद्देश्य था। प्रभु का लीलागान करना ही

उनका अहर्निश का कार्य था। भक्ति की सूक्ष्मतम दिशाओं में उनकी पहुँच थी क्योंकि उनकी अनुभूति बड़ी ही प्रबल थी। उनके हृदय के न जाने कितने सुप्त भाव, गङ्गा की भाँति अविरल धारा के रूप में बह उठे और जीवन पर्यन्त बहते रहे। श्रीकृष्ण-भक्ति के अन्तर्गत उन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला,, गोपी-विरह तथा भ्रमरगीत के स्थल इतनी सुन्दरता से काव्य के रूप में प्रस्तुत किए हैं जिनकी समानता कोई भी कवि न कर सका। बालस्वभाव-वर्णन में सूर बेजोड़ हैं!

सूर की भक्ति-पद्धति में 'सखा भाव' का भी समावेश है। उन्होंने कृष्ण को अपना मित्र मान कर उस प्रेम का वर्णन किया, जिसमें दो प्राणी अभिन्न होते हैं। सूर का उपालम्भ, जो 'भ्रमर गीत' के नाम से प्रसिद्ध है इतना सुन्दर व्यंग्यात्मक काव्य है जिसकी तुलना विश्व साहित्य में अति दुष्कर है। गोपी और उद्धव संवाद में शुद्ध प्रेम के उत्कर्ष और ऊँचे प्रकार के काव्य के दर्शन होते हैं। सूर वात्सल्य और शृङ्गार वर्णन में अप्रतिम हैं। अपने क्षेत्र में सूर की समानता करने वाला अन्य कोई कवि नहीं है।

सूर की काव्य-पद्धति 'गीत काव्य' की है। सूर ने सहस्रों राग-रागिनियों में अपने सुन्दर पदों को गुम्फित किया है। उनके पद गेय हैं! जाने-अनजाने जनता के सभी वर्ग उनके पदों को गुनगुना कर आनन्द लाभ कर लेते हैं। उनके काव्य की भाषा ब्रज भाषा हैं। ब्रजभाषा का साहित्यिक स्वरूप सूर की रचना में बड़ा ही सुंदर मिलता है। एक तो ब्रजभाषा स्वयमेव ही बड़ी मधुर और कर्ण-प्रिय है, दूसरे वह ब्रजभाषा दिव्यचक्षु सूर के हाथ पड़ गई जिसने उसे ऐसा पकड़ा कि कृष्ण के प्रेम-सरोवर में डुबाते-डुबाते सराबोर कर दिया। भाषा को उन्होंने विभिन्न अलंकारों से इस प्रकार अलंकृत किया है कि ज्ञात नहीं होता है कि काव्य का कौन अलंकार शेष रह गया हैं जिसका प्रयोग अन्धे होते हुए भी सूर ने टटोल-टटोल कर न कर लिया हो।

सूर एक श्रद्धालु और विश्वासी भक्त थे। उन्होंने कोई नया संप्रदाय खड़ा करने का प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि उन्हें तो अपने प्रभुप्रेम का इतना रस आ गया था कि उन्हें अन्य झगड़ों के लिए अवसर कहाँ था? उन्होंने तो अपने भक्त हृदय से कृष्णप्रेम के दर्शन किए। दर्शन की जब उन्होंने अभिव्यक्ति की तो वही 'काव्य' का रूप धारण कर बैठा। उनका उद्देश्य काव्य-सृष्टि करना न था। कविता ने तो उनका पीछा किया। फिर भी काव्य के क्षेत्र में वे अपना जो स्थान स्थिर कर गए वह आज भी दीप्तिमान है।

समालोचकों की दृष्टि में

"सूरदास जब अपने विषय का वर्णन करते हैं तो मानों अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़ कर उनके पीछे दौड़ा करता है! उपमाओं की बाढ़ आजाती है। रूपकों की वर्षा होने लगती है। संगीत के प्रवाह में कवि स्वयं बह जाता है। अपने को भूल जाता है। पन्ने-पन्ने पर पढ़ते जाइए, केवल उपमाओं और रूपकों की घटा, अन्योक्तियों का ठाठ, लक्षणा और व्यंजना का चमत्कार यहाँ तक कि एक ही चीज दो-दो, चार-चार, दस-दस बार तक दुहराई जा रही है फिर भी स्वाभाविक और सहज प्रवाह कहीं भी आहत नहीं हुआ। काव्य गुणों की इस विशाल वनस्थली में एक अपना सहज सौन्दर्य है। वह उस रमणीय उद्यान के समान नहीं जिसका सौन्दर्य पद-पद पर माली के कृतित्व की याद दिलाया करता है, बल्कि उस अकृत्रिम वन-भूमि की भाँति है जिसका रचयिता रचना में ही घुलमिल गया है।"

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

"वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन सर ने अपनी बन्द आँखों से किया उतना और किसी कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आए। ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यक कृति इन्हीं की मिलती है जो अपनी पूर्णता के कारण आश्चर्य में डाल

देती है। साहित्यक रचना और इतनी प्रचुर, प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण कि अगले कवियों की शृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ इनकी जूठी जान पड़ती हैं। शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँचा है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"'रघुराज' और कविगन की अनूठी उक्ति, मोहि लगी झूठी जानि
जूठी सूरदास की ॥"

—महाराज रघुराजसिंह देवजी

"जैसा उत्तम और सच्चा बालचरित्र इस महाकवि ने लिखा वैसा संसार भर के किसी ग्रन्थ में हम लोगों ने अद्यावधि नहीं देखा।"

—मिश्रबन्धु

सूर-काव्य में सार्वजनिक प्रेमानुभूतियों का सजीव, स्वाभाविक और रसपूर्ण चित्रण है।—बाल-स्वभाव की द्योतक जो क्रियायें अथवा चेष्टायें और बाल्यकाल की जो उमंगभरी, निश्छल तथा भोली क्रीड़ायें होती हैं उन सबका चित्रण सूर ने बहुत उत्तमता से किया है।

—डा० दीनदयाल गुप्त

सूर का काव्य आत्मा का काव्य है। वह अन्तर के तार को झंकृत करने वाला है, जिसके झंकृत होते ही बुद्धि निर्मल, मन विकसित, प्राण पुलकित और शरीर उल्लसित हो उठता है।

डॉ० मुंशीराम शर्मा

श्रीकृष्ण का वचन उद्धव के प्रति

पहिले करि परनाम नंद सों समाचार सब दीजो।
और वहाँ वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजों॥
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेंटियो।
सुख-संदेश सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियो॥
मंत्री इक बन बसत हमारो ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान ह्वै मेरे हूतो ताही माथ नवाइयो॥
उद्धव प्रति सब कही स्यामजू अपनी मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रज रीति॥

उद्धव! यह मन निश्चय जानो।
मन क्रम बच, मैं तुम्हैं पठावत ब्रज को तुरत पलानो॥
पूरन ब्रह्म, सकल, अबिनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख न रूप, जाति कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु बिरह-नदी में भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति॥

पथिक! सँदेसो कहियो जाय।
आवैंगे हम द्वोनों भैया, मैया जनि अकुलाय॥
याकों बिलगु बहुत हम मान्यो जो कहि पठयो धाय।
कहँ लौं कीर्ति मानिए तुम्हरी बड़ो कियो पय प्याय॥
कहियो जाय नन्द बाबा सों, अरु गहि पकरयो पाँय।
दोऊ दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी गाय॥
यद्यपि मथुरा बिभव बहुत है तुम बिनु कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजबासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय॥

उद्धव का ब्रज में दिखाई पड़ना

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेइ पट वैसिय रथ-बैठनि, वैसिय है उर दाम॥
जैसी हुतिं उठि तैसिय दौरीं छाँड़ि सकल गृह-काम।
रोम पुलक, गदगद भईं तिहि छन सोचि अङ्ग अभिराम॥
इतनी कहत आय गए ऊधो, रहीं ठगी तिहिं ठाम।
सूरदास प्रभु ह्याँ क्यों आवैं बँधे कुब्जा-रस स्याम॥

सखियों का प्रश्न

कहौ कहाँ ते आए हौ।
जानति हौं अनुमान मनो तुम जादवनाथ पठाए हौ।
वैसोइ बरन, बसन पुनि वैसेइ, तन भूषन सजि ल्याए हौ।
सरबसु लै तब संग सिधारे अब कापर पहिराए हौ॥
सुनहु मधुप! एकै मन सबको सोतो वहाँ लै छाए दौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर तहँहिं जाहु जह भाए हौ॥
अब यह कौन सयानप? ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्याम गात हैं जानि भले करि पाए हौ॥

उद्धव की दशा

पूछि कुसल गोपाल की रहीं सकल गहि पाय।
प्रेम मगन ऊधो भए, हो, देखत ब्रज को भाय॥
पाति बाँचि न आवई, रहे नयन जल पूरि।
देखि प्रेम गोपीन को, हो, ज्ञान-गरब गयो दूरि॥
तब इत उत बहराय नीर नयनन में सोख्यो।
ठानी कथा प्रबोध बोलि सब गुरू समोख्यो॥
जो व्रत मुनिवर ध्यावहिं पर पावहिं नहिं पार।
सो व्रत सीखो गोपिका, हो, छाँड़ि विषय विस्तार॥

सुनि ऊधो के बचन रहीं नीचे करि तारे।
मनो सुधा सों सींचि आनि विषज्वाला जारे॥

सखियों की वाग्विदग्धता

आए जोग सिखावन पाँड़े।
परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँड़े॥
हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखैं ते राँड़े।
कहौ, मधुप, कैसे समायँगी एक म्यान दो खाँड़े॥
कहु षटपद कैसे खैयतु है हाथिन के सँग गाँड़े।
काकी भूख गई बयारि भखि बिना दूध घृत माँड़े॥
काहे को झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डाँड़े?
सूरदास तीनों नहिं उपजत धनिया धान कुम्हाँड़े॥

हमरे कौन जोग व्रत साधै?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटाको को इतनो अवराधै?
जाकी कहूँ थाह नहिं पैए अगम, अपार, अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधैं?
आसन, पवन, भूति, मृगछाला ध्याननि को अवराधै?
सूरदास मानिक परिहरि के राख गाँठि को बाँधै?

बिलग जनि मानहु, ऊधो प्यारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे॥
मानहु नील माठ तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन न्यारे॥

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन बच क्रम नँदनंदन ही सों उर यह दृढ़ करि पकरी॥

जागत, सोवत, सपने, सौंतुख कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत. ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी॥
सोई ब्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी॥

निर्गुन कौन देस को बासी?
मधुकर ! हँसि समुझाय सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे ! कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी॥

काहे को रोकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप ! निर्गुन-कण्टक तें राजपंथ क्यों रूँधो?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघनजू धौं।
बेद पुरान सुमृति सब ढूँढौ जुवतिन जोग कहूँ धौं?
ताको कहा परखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधो॥

उपमा एक न नैन गही।
कवि जन कहत-कहत चलि आए सुधि करि-करि काहू न कही॥
कहे चकोर, मुख-विधु बिनु जीवत; भँवर न, तहँ उड़ि जात।
हरि मुख-कमल-कोस बिछुरे तें ठाले क्यों ठहरात?
खंजन मनरंजन जन जौ पै, कबहुँ नाहिं सतरात।
पंख पसारि न उड़त, मन्द ह्वै समर-समीप बिकात॥
आए बधन ब्याध ह्वै ऊधो, जौ मृग, क्यों न पलाय?
देखत भाजि बसै घन वन में जहँ कोउ संग न धाय॥
ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे? प्रतिछिन अति दुख बाढ़त।
सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि संग न छाँड़त॥

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिंन होत चंद को ढरिबो॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम-पास को परिबो।
जब तें बिछुरे कमलनयन, सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो॥
सीतल चंद अगिनि सम लागत, कहिए धीर कौन बिधि धरिबो।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो॥

ऊधो! प्रीति न मरन बिचारै।
प्रीति पतंग जरै पावक परि, जरत अङ्ग नहिं टारै॥
प्रीति परेवा उड़त गगन चढ़ि गिरत न आप सम्हारै।
प्रीति मधुप केतकी कुसुम बसि कंटक आपु प्रहारै॥
प्रीति जानु जैसे पय पानी जानि अपनपौ जारै।
प्रीति कुरंग नादरस, लुब्धक तानि तानि सर मारै॥
प्रीति जान जननी सुत-कारन को न अपनपौ हारै?
सूर स्याम सों प्रीति गोपिन की कहु कैसे निरुवारै॥

कबहूँ सुधि करत गोपाल हमारी?
पूछत नंद पिता ऊधो सों अरु जसुमति महतारी॥
कबहुँ तौ चूक परी अनजानत, कह अबके पछिताने?
बासुदेव घर-भीतर आए हम अहीर नहिं जाने॥
पहिले गरग कह्यो हो हमसों, 'या देखे जनि भूलै'।
सूरदास स्वामी के बिछुरे रात-दिवस उर सूलै॥

ऊधो! इतनी कहियो जाय।
अति कृसगात भई हैं तुम बिनु परम दुखारी गाय॥
जल समूह बरसत अँखियन तें, हूँकत लीने नाँव।
जहाँ जहाँ गोदोहन करते दूँढ़त सोइ सोइ ठाँव॥
परति पछार खाय तेहि तेहि थल अति ब्याकुल ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारे हैं बारि मध्य तें मीन॥

मधुकर ! यह कारे की रीति ।
मन दै हरत परायो सर्बस करै कपट की प्रीति ।।
ज्यों षटपद अंबुज के दल में बसत निसा रति मानि ।
दिनकर उए अनत उड़ि बैठे फिर न करत पहिचानि ।।
भवन भुजंग पिटारे पाल्यो ज्यों जननी जनि तात ।
कुल-करतूति जाति नहिं कबहूँ सहज सो डँसि भजि जात ।।
कोकिल काग कुरंग स्याम की छन छन सुरति करावत ।
सूरदास, प्रभु को मुख देख्यो निसदिन ही मोहि भावत ।।

यशोदा का वचन उद्धव के प्रति

सँदेसो देवकी सों कहियो ।
हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियो ।।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते ।
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती करम करम करि न्हाते ।।
तुम तौ टेव जानतिहि हौ हो तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन-रोटी भावै ।।
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच ।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन हौ हैं करत सँकोच ।।

उद्धव का वचन कृष्ण के प्रति

कह लौं कहिए ब्रज की बात ।
सुनहु स्याम ! तुम बिनु उन लोगन जैसे दिवस बिहात ।।
गोपी, ग्वाल, गाय, गोसुत सब मलिन बदन, कृसगात ।
परम दीन जनु सिसर-हिमी-हत अंबुज-गन बिनु पात ।।
जो कोउ आवत देखति हैं सब मिलि बूझति कुसलात ।
चलन न देति प्रेम-आतुर उर, कर चरनन लपटात ।।

पिक, चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
सूर स्याम संदेसन के डर पथिक न वा मग जात॥

कृष्ण का वचन उद्धव के प्रति

ऊधो ! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि—मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत, तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा-नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं॥

गोस्वामी तुलसीदास

कवि-परिचय

कवि-कुल-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के किंचित् उपलब्ध आत्मचरित की सामग्री हमें (१) बाबा बेनीमाधव दास-कृत 'गुसाईं चरित' और (२) बाबा रघुवरदास कृत 'तुलसी चरित' द्वारा मिलती है। दोनों में उनका जन्म-वर्ष एक ही ठहरता है। इनका जन्म विक्रमी संवत् १५५४ था। इनकी जन्म-भूमि ग्राम राजापुर, जिला बाँदा (उत्तर प्रदेश) में अधिकांश लोगों द्वारा मानी गई है। 'गुसाईं-चरित' के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। "गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होइ"—खानखाना। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। ऐसा कहा जाता है कि इनके माता-पिता इनके बालकपन में ही चल बसे थे। "मातु-पिता जग जाइ तज्यौ, बिधिहू न लिखो कछु भाल भलाई॥" इनके बचपन का नाम 'रामबोला' ज्ञात होता है।—"रामबोला नाम हौं गुलाम राम राय को।" इनका बालक-जीवन घोर दरिद्रता में बीता—"घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।"

इनका अधिकांश समय अयोध्या और काशी में ही बीता। इनके गुरु का नाम 'नरहरिदास' था—"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकर खेत। समुझी नहिं तस बालपन तब अति रह्यौं अचेत॥" ये लड़कपन में सूकर क्षेत्र में रहे। वहीं राम-कथा सुनी और काशी के आचार्य शेष सनातन के यहाँ रहकर सभी वेदों और शास्त्रों में पांडित्य प्राप्त किया। इसके अनन्तर गृहस्थ हुए। इनकी स्त्री का नाम रत्नावली था। ये दीनबन्धु पाठक की पुत्री थीं। कहते हैं कि अपनी स्त्री की एक करारी फटकार पर ही तुलसीदास जी ने वैराग्य लिया—

"लाज न लागत आपको, दौरे आएउ साथ। धिक् धिक् ऐसी प्रीति को, कहा कहौं मैं नाथ ।। अस्थि-चर्ममय देह मम तामें एती प्रीति। जो होती रघुनाथ में, होत न तौ भव-भीति।" इतनी फटकार पर तुलसी के भीतर 'नरहरिदास' द्वारा प्रेरित किया हुआ राम-भक्ति-बीज अंकुरित हो गया और यह वैराग्य धारण करके राम की भक्ति हेतु घर से निकल गए! "हम तौ चाखा राम रस, पतिनी के उपदेश।!"

इन्हें गंगा का किनारा अति रुचिकर था :—"भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम को लेत नितै हौं;" "देवसरि सेवौं" इत्यादि। काशी में ये अस्सी घाट पर रहते थे। वहीं इनके द्वारा स्थापित हनुमान-जी और गुफा है। संकटमोचन हनुमान जी की मूर्ति इन्हीं की स्थापित की हुई है। 'रामचरितमानस' की अद्भुत रचना, जिसे अयोध्या में आरम्भ किया था, इन्होंने सम्भवतः काशी में ही पूरी की। जीवन के अन्तिम दिनों में ये बहुत रोगग्रस्त रहे। "रोग निकर, तनु जरठपनु,तुलसी संग कुलोग;" "बाँहपीर महाबीर बेगि ही निवारिए;" "तुलसी,की बाँह पर लामी लूम फेरिए;" और "ज्याइए हौं जानकीरमन-जन जानि जिय, मारिए तौ माँगी मीच सूधिऐ चहतु हौं।"

मूल गोसाईं चरित के अनुसार इनके शरीरत्याग का समय श्रावण कृष्ण तीज ही ठहरता है—"संबत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर। सावन श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो शरीर।" टोडरमल खत्री, जो गोस्वामी जी के परम मित्र थे—के वंशज आज तक काशी में श्रावण श्यामा तृतीया को सीधा देते और गोस्वामी जी की स्मृति को बनाए हुए हैं।

हिन्दी-काव्य में तुलसी

निर्गुण संत-धारा जब भारतीय जनता के उद्वेलित हृदय में स्थायित्व न पा सकी तो उसने स्वभावतः सूर की सगुणोपासना में रस लेना प्रारम्भ

किया। थोड़े समय पश्चात् उसने यह भी अनुभव किया कि कृष्ण का स्वरूप जिसकी ओर वह एकाएक झुकी थी कुछ समय के लिए उसे मनोरंजन दे सकती थी। कृष्ण के बालकपन तथा केलिक्रीड़ाओं में अपने दुःखी मन को बहला सकती थी, किन्तु किसी बड़ी आशा की प्राप्ति का स्वप्न पूरा होना नहीं देख रही थी। भारतीय जन-हृदय तो यह चाहता था कि कोई उनकी गिरी हुई दशा को अभ्युदय की ओर ले चले। वे एक ऐसा लोक-नायक चाहते थे जो उनके जीवन के सभी अंगों में स्फूर्ति भर दे। ऐसे लोकवीर स्वरूप की कामना और उपासना की प्रवृत्ति को भली-भाँति पहिचान कर भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने विक्षुब्ध भारतीय जनता के समक्ष भगवान् राम के उस सर्वाङ्गीण समुन्नत स्वरूप को रखा जिसमें पिता, माता, भाई, पुरजन, दीन, त्रासित, राजा, प्रजा, अलौकिक तथा अन्य मानवीय सभी अधिकारों और उत्तरदायित्व का सुन्दर समन्वय उसे मिला। यह समय की पुकार थी। महात्मा तुलसीदास ने उस लोकनायक स्वरूप को नाना रूपों में प्रस्तुत किया। वे जितने ऊँचे भक्त थे उससे कम उत्कृष्ट कवि नहीं। काव्य की उत्कृष्ट भावनाओं को व्यक्त करने में भी वे बड़े कुशल और प्रवीण थे। उस समय काव्य के अन्तर्गत पाँच प्रकार की शैलियाँ प्रचलित थीं :—(१) गीत काव्य, (२) मुक्तक काव्य, (३) दोहा-चौपाई शैली, (४) सतसई की भाँति दोहों की शैली और (५) वीर काव्य अर्थात् रासो की शैली।

महात्मा तथा महाकवि तुलसीदास ने पूर्व-प्रचलित उक्त सभी शैलियों में राम का चरित्र प्रस्तुत किया और ऐसी उच्चतम उत्कृष्टता दिखाई कि प्रत्येक शैली का काव्य अपने क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इनके ग्रंथों की संख्या बड़ी लम्बी है जिसमें प्रामाणिक ग्रन्थ ये हैं :—(१) रामचरित मानस, (२) विनय-पत्रिका, (३) कवितावली, (४) गीतावली (५) दोहावली, (६) बरवै, (७) जानकी मंगल, (८) पार्वती मंगल, (९) रामलला नहछू, (१०) कृष्ण गीतावली, (११) वैराग्य संदीपनी, (१२) रामाज्ञा प्रश्न।

महात्मा तुलसीदास साकार ईश्वर के उपासक थे। उनके 'राम' जहाँ एक ओर 'सिया राम मय सब जग जानी' की भावना में सर्वत्र विराजमान थे, वहीं उनके 'राम' एक ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् थे (तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लेउ हाथ) जो निराश्रित जनता को प्रत्येक दशा में न केवल आशा के सूत्र में ही बाँधे वरन् उसे चतुर्मुख अभ्युदय की ओर अग्रसर कर दे। महात्मा तुलसीदास ने अपनी व्यक्तिगत भक्ति की आड़ में से जनता की भावनाओं को जिस प्रश्रय-स्थान पर ला दिया यह एक अद्भुत कार्य है। तुलसी की भक्ति दास्य भाव की थी। उनके राम भगवान् थे, जो जगत् के दुखों को दूर करने में, पथ-प्रदर्शन करने में, कर्तव्य और उत्तरदायित्व प्रदान करने में सर्वसशक्त थे। ऐसे सर्वशक्तिमान् भगवान् की प्रतिष्ठा करना जिसमें जनता अपनी सारी आशाएँ प्राप्त कर सके, तुलसी की एक अद्भुत सूझ थी। तुलसी ने मानव-जीवन के विभिन्न व्यापारों का चित्रण करके 'राम' को ऐसा भगवान् बना दिया जिसके आधार पर भारतीय समाज अपनी सभ्यता और संस्कृति की दृढ़ परम्परा अवस्थित कर सका। भक्ति द्वारा इतने बड़े पैमाने पर एक सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति करना अन्य किसी भी साहित्य-कार के लिए संभव नहीं हो सका। तुलसी ने अपनी साहित्य-सृष्टि द्वारा समाज के सर्वाङ्गीण अभ्युदय को उपलब्ध करने का महान् प्रयास किया था और जिसमें वे पूर्णतः सफल हुए।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य को न तो एक शैली में सीमित रखा और न जीवन के किसी एक क्षेत्र में। प्रबन्ध काव्य, गीत काव्य, छंद पद्धति, मुक्तक काव्य शैली आदि सभी काव्यशैलियों पर एक सफल अधिकारी की भाँति लेखनी चलाई। जीवन की सभी दिशाओं के पूर्ण

चित्र खींचे। ऐसी प्रतिभा यदि किसी में भी रही तो हमारे भक्त-शिरोमणि महाकवि तुलसीदास में।

इसके अतिरिक्त उनमें एक और विशेषता जो थी वह भाषा के संबंध में है। उनका जितना अधिकार 'अवधी' पर था उससे कम 'ब्रजभाषा' पर नहीं। अपनी साहित्यिक कृतियों में संस्कृत, अवधी, ब्रज, तथा उर्दू, फारसी, अरबी के प्रचलित और देशगत बोलियों के सशक्त शब्दों का जितना सुन्दरतम समन्वय और सौन्दर्य को व्यक्त करने में एक शिष्ट समायोजन जितना उन्होंने संभव किया है उतना हिन्दी काव्य में तो कोई नहीं कर सका। उनकी भाषा जितनी ही लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय। काव्योपयोगी तथा परिमार्जित भाषा का सुन्दर प्रवाह उनकी रचनाओं में स्पष्ट लक्षित है।

कथा-प्रवाह, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-चित्रण, आलाप-संलाप, छंद-नियुक्ति, गीतोद्भाव का प्रभाव, भक्ति का सात्विक स्वरूप, समाज के विभिन्न प्रतिमानों का चित्रण आदि की रचनाओं में तुलसी को पाना किसी भी कवि के लिए दुष्कर कार्य है। तुलसी के लिए अलंकार साध्य वस्तु न थे, किन्तु तुलसी के काव्य को स्वभावगत अलंकारों ने जिस प्रकार आभूषित किया है उसका वर्णन करना कठिन है। उनका भावपक्ष जितनी प्रबल और उत्कृष्ट है कलापक्ष उतना ही सरस और स्वाभाविक। मानव-प्रकृति के ज्ञान का विस्तृत परिचय उनकी कृतियों से हमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य-जीवन की जितनी अधिक वृत्तियाँ हमें तुलसी के विभिन्न पात्रों से चित्रित मिलती हैं उतनी अन्यत्र नहीं। इन वृत्तियों का साहित्योचित विकास तुलसी की सर्वतोमुखी प्रतिभा का एक अनुपम उदाहरण है। लोक-भावना का परिचय हमें तुलसी के पात्रों में सर्वत्र मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास की सफल काव्य-साधना की कुंजी उनकी 'समन्वयात्मक प्रवृत्ति' है। भाषा का समन्वय, काव्यशैलियों का समन्वय, परस्पर विरोधिनी संस्कृतियों का समन्वय, साधानाओं, आचार-निष्ठाओं और दार्शनिक पद्धतियों का समन्वय, समाज के विषमवर्गों का समन्वय तथा समाजगत उन्नतिप्रेरक विभिन्न लक्ष्यों का समन्वय करके तुलसी ने जो काम किया वह कवि क्या कोई अन्य बड़े से बड़ा लोकनायक भी नहीं कर सका। संस्कृति सम्बन्धी भारतीय उन्नत परम्परा में स्थायी और पुष्ट सूत्र पिरोना हमारे तुलसी का ही काम था। जिस दृढ़ आधार पर सारी भारतीय सामाजिकता सदियों से अवलम्बित होती चली आ रही है और आज भी उसका एक किनारा तक नहीं टूटा है उसका निर्माण तुलसी ने किया।

इस प्रकार जिस दृष्टि से देखिये गोस्वामी तुलसीदास जी हमें कहीं महाकवि दिखाई पड़ते हैं, कहीं आतुर भक्त और संत, कहीं दृढ़ निश्चय-कारी समाज-सुधारक, कहीं प्रकांड पंडित, कहीं विनीत सेवक, कहीं कुशल साहित्यिक और कहीं भविष्य के सफल द्रष्टा और सब मिला-जुलाकर जीवन तथा समाज में महान् समन्वय के सुन्दर प्रतीक।

समीक्षकों की दृष्टि में

"महात्मा बुद्ध के बाद भारत में सबसे बड़े लोकनायक तुलसीदास हुए हैं। ये असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे।"

—डा० ग्रियर्सन

"वे आदर्शवादी थे और अपने काव्य से भावी समाज की सृष्टि कर रहे थे। वे उस देश में पैदा हुए थे जहाँ कल्पना की जा सकती है कि राम के जन्म से ६० हजार वर्ष पहिले रामायण काव्य लिखा गया अर्थात् जहाँ कवि भविष्य का द्रष्टा और स्रष्टा समझा जाता है। तुलसी दास ऐसे ही भविष्यस्रष्टा थे। उन्होंने भावी समाज की सृष्टि सचमुच की थी। इस विषय में आज तीन सौ वर्ष बाद कोई संदेह नहीं

रह सकता। आज का उत्तर-भारत तुलसी दास का रचा हुआ है। वही इसके मेरुदण्ड हैं।"

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

"वह न जाने कौन पवित्र घड़ी थी जब महात्मा तुलसीदास ने रामचरित मानस का निर्माण करने के लिये अपनी लेखनी संचालित की थी। आज यह पुस्तक संख्या में समस्त भूमण्डल के समांश मानव-जाति का वेद, बाइबिल, जेंदावस्ता, कुरान या जो कुछ कहिये हो रही है। केवल अक्षरज्ञान रखने वालों से लेकर वेदान्ती तक समान रूप से इसका आदर करते हैं।"

—'मिश्रबन्धु'

"अपने दृष्टि-विस्तार के कारण तुलसीदासजी उत्तरी भारत की समस्त जनता के हृदयमंदिर में पूर्ण प्रेम-प्रतिष्ठा के साथ विराज रहे हैं। इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक में है। एक ओर शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश और दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोक-धर्म की अत्यन्त उज्ज्वल छटा उनमें वर्तमान है। भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इन्हीं महानुभाव को। गोस्वामीजी के प्रादुर्भाव को हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक चमत्कार समझना चाहिए।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"रामचरितमानस में मर्यादावाद की पुष्टि तथा 'रामराज्य' का वर्णन करके उदात्त आदर्श रक्खा गया है, जिसमें मनुष्य समाज के प्रति हित-कामना गोस्वामी जी की स्पष्ट झलकती है। उनके अमर काव्यों में मानवता के चिरंतन आदर्श भरे पड़े हैं। हिन्दी-कविता के कीर्ति-मंदिर में गोस्वामी जी का स्थान सबसे ऊँचा और सबसे विशिष्ट है।"

—बाबू श्यामसुन्दर दास

राम-राज्य

राम-राज बैठें त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप विषमता खोई ॥

दो०—बरनास्रम निज-निज धरम निरत बेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम-राज नहिं काहुहि व्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परमगति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा । सब सुन्दर सब निरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

दो०—रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माँहि ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत' प्रभु केरी । यह बरतन हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहि चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिवर दमसीला ॥
राम-राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥
सब उदार सब पर उपकारी । विप्र चरन सेवक नर नारी ॥
एक नारिब्रत सब नर झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दो०—दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहुँ मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ॥३॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥
लता बिटप माँगे मधु चवहीं । मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । त्रेता भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रकटीं गिरिन्ह बिबिध मनिखानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वादु सुखकारी ॥
सागर निज मरजादाँ रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥

दो०—रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरन कि जाइ ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ ॥

जब ते राम प्रताप खगेसा । उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका । बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥
जिन्हहि सोक ते कहऊँ बखानी । प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने । काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ । ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा । इन्ह कर हुनर न कवनिहु ओरा ॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना । ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख संतोष बिराग बिबेका । बिगत सोक ए कोक अनेका ॥

दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।
माँगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के राज ॥५॥

(रामचरितमानस)

राम-वन-गमन

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत, अजा-खुर बारिधि बाढ़े।
तुलसी जिहि के पदपंकज ते प्रगटी तटिनी जु हरे अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥
एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौ जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर का समुझाइहौं जू।
तुलसी अवलंब न और कछू लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिये मोहि बिना पग धोये, हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥
रावरे दोस न पायन को पग धूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन ते बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पाय पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकि ओर हहा है॥

पात-भरी सहरी सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति, कछु बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याहि लागि राजा जू, हौं
दीन बित्तहीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरेगी मेरी,
प्रभु सौं निखाद ह्वै के बाद ना बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सौं साँची कहौं,
बिना पग धोये नाथ नाव ना चढ़ाइहौं॥

पुर ते निकसी रघुवीर बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

जल को गए लक्खन है लरिका, परिखौ पिय, छाहँ घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।
तुलसी, रघुबीर प्रिया-स्रम जानि के, बैठि बिलंब लौ कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलकौ तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा मुनि-वेष कियो है।
संग लिए बिधु-बैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पांयन तो पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥
रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ तें कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है।
ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिबे जोग इन्हैं किमि कै बनबास दियो है॥

सीस जटा उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरीछी-सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बनमारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहि-बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम-बधू सिय सों कहो साँवरे से सखि रावरे को हैं॥

सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने सयानी हैं जानकी जानि भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाइ चली।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै, अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै, बिगसीं मनों मंजुल कंज कली॥
पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाये।
कर बान-सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाये।
जिन देखे अली, सतभायहुँ तें तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाये।
यहि मारग आज किसोर-बधू बिधुबैनी समेत सुभाय सिधाये॥

बिंध्य के बासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतम-तीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनि बृन्द सुखारे।

ह्वै हैं सिला सब चन्द-मुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली, रघुनायक जू करुना करि कानन को पगुधारे॥

(कवितावली से)

भरत का आत्म-निवेदन

जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वै हौं।
तौ जननी! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं?॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानिहै साँची?।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की, खल-बच बिसिखन बाँची?॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै॥
दीनबन्धु कारुन्य-सिन्धु बिनु कौन हिये की बूझै?।
'तुलसी' राम बियोग-बिषम-बिष-बिकल नारि नर भारी।
भरत सनेह सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी॥

(गीतावली से)

विनय

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति सुर-सरिता, आस करत ओस कन की।
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की;
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की।
ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की;
टूटत अति आतुर अहार-बस छुति बिसारि आनन की।
कहँ लौं कहौं कुचालि कृपानिधि, जानत हौ गति जन की,
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पनकी॥

केसव, कहि न जाय, का कहिए?
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए।
सून्य भीति पर चित्र रङ्ग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे;

धोए मिटै न मरै भीति, दुख पाइय यहि तनु हेरे!
रबिकर नीर, बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं;
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने;
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचाने॥

(विनयपत्रिका से)

दोहे

राम-नाम मनि दीप धरु जीह-देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार॥

राम-नाम को अङ्क है सब साधन हैं सून।
अङ्क गये कछु हाथ नहिं अङ्क रहे दसगून॥

राम-नाम अवलम्ब बिनु परमारथ की आस।
बरसत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास॥

बरषा ऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास।
राम-नाम बर बरन जुग सावन भादों मास॥

भगत-हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥

जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ।
सोइ संपदा विभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर?

बध्यो बधिक पन्यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरतहु लगी न खोंच॥

तुलसी के मति चातकहि केवल प्रेम पियास।
पियत स्वातिजल जान जग, चातक बारह मास ॥
जो मधु मरै, न मारिए, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥
रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर,परिनाम हित,बोलिय बचन बिचारि ॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर कथहिं प्रलापु ॥
तुलसी जसि भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पर, ताहि तहाँ लै जाय ॥
साहब तें सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गये हनुमान ॥

(दोहावली से)

मीराँबाई

जीवन-परिचय

प्राचीन अनेक महाकवियों की ही भाँति मीराँबाई के प्रामाणिक जीवन-वृत्त के संबंध में विद्वानों में अब भी मतभेद है। सर्वाधिक मान्य निर्णय के अनुसार इनका जन्म १५०४ ई० में हुआ था। बड़ी होने पर इनका विवाह राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ। श्रीकृष्ण की मूर्ति से खेलते-खेलते बचपन में ही इनका प्रेम उन्हीं से हो गया था। वंश की मर्यादा के अनुसार, मन की इच्छा के विपरीत, इनका विवाह कर दिया गया। विवाह हो जाने पर भी इन्होंने भगवान् कृष्ण का पति रूप से आराधन नहीं छोड़ा। राणा-कुल की मर्यादा के विपरीत ये भगवान् की मूर्ति के आगे नाचा और गाया करती थीं। इनके पति ने पहले इन्हें बहुत समझाया। किन्तु उसका इनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कहते हैं कि इनके साथ अत्यन्त कठोरता का व्यवहार भी किया गया, किंतु ये अपने मनोनीत पथ से विरत नहीं हुईं। सन् १५२३ में इनके पति का देहावसान हो गया। इनकी आराधना उसी प्रकार चलती रही। मन्दिर में भगवान् की मूर्ति के सम्मुख भाव-विभोर होकर ये नृत्य करतीं और स्वरचित भजन गाया करती थीं। ये साधुओं और संतों से बराबर मिलती थीं। लोक-प्रवाद की इन्होंने कभी भी पर्वाह नहीं की। कहते हैं कि प्रसिद्ध भक्त रैदास की ये शिष्या थीं।

काव्य-रचना

ये भक्त प्रथम थीं, कविता उनकी भक्ति का साधन थी। इनके काव्य में नारी का प्रेमाकुल हृदय सीधे निश्छल रूप में

उतर आया है। प्रेम की जैसी मार्मिक व्यंजना इनके काव्य में मिलती है, वैसी हिन्दी के दो-चार कवियों में ही मिलेगी। इनकी कविता-सुन्दरी भाँति-भाँति के अलङ्कारों से अपना शृङ्गार करके नहीं उतरी, उसका भोलापन, स्वाभाविकता, सहजता ही उसका शृङ्गार हो गई है। कहीं भी जान-बूझकर चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति देखने में नहीं आती। इनकी भाषा मूलतः राजस्थानी है, जो ब्रजभाषा की अपेक्षा गुजराती भाषा की ही ओर विशेष रूप से उन्मुख है।

उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार तो इनकी कविता में बिना बुलाए आते गए हैं।

रहस्यवादी प्रवृत्ति

यों तो मीराँ प्रधानतः श्रीकृष्ण के सगुण रूप की ही उपासिका हैं, किन्तु कहीं-कहीं इनकी कविताओं में रहस्यवाद की झलक भी मिल जाती है। किन्तु इस झलक मात्र से उन्हें रहस्यवादी या निर्गुणोपासिका कह बैठना भारी भ्रान्ति होगी। वंशीवादक कृष्ण का पूरा नख-शिख उनकी कविताओं में अनेकानेक बार आया है। वे कृष्ण के दर्शन की कामना बार-बार प्रकट करती हैं। हाँ, यह अवश्य है कि निर्गुणिए सन्तों का प्रभाव भी उन पर पड़ा था। और सच तो यह है कि भगवान् की सगुणोपासना करने वाले भक्तों की दृष्टि उनके अज, अद्वैत, गुणातीत, सर्व-व्यापक और निर्विकल्प रूप की ओर भी जाती रही है, जो प्रेम के क्षेत्र से पृथक् है। अतः यह निर्विवाद है कि वे भगवान् के सगुण रूप की उपासिका थीं और वह उपासना 'माधुर्य भाव' की थी। वे श्रीकृष्ण को अपना चिरन्तन पति मानती थीं।

समालोचकों की दृष्टि में

"मीराँ की समस्त काव्य-सृष्टि गीतों में पाई जाती है। ये स्वयं भी संगीत की पण्डिता थीं। इनके पदों में भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों के नाम भी पाए जाते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हिन्दी-साहित्य में इनकी जैसी सहृदया कवयित्री दूसरी नहीं हुई।"

—'प्रवासी'

"मीराबाई का नाम भारत के प्रधान भक्तों में है और इनका गुणगान नाभाजी, ध्रुवदास, व्यासजी, मलूकदास आदि सब भक्तों ने किया है! इनके कुछ पद तो राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। पर सब में प्रेम की तल्लीनता समान रूप से पाई जाती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"उन्होंने जो कुछ भी कहा वह उनकी आन्तरिक अनुभूति की तीव्रता के कारण रागमय होकर वा गीतरूप में ही निकला। वे उन्मुक्त एवं निर्द्वन्द्व भाव से रहकर सदा आकाश-विहारिणी कोयल की भाँति, अपनी हृदय-संचित प्रेम-सुधा स्वतः प्रसूत गीतियों के रूप में बरसाती रहीं। ऐसा किये बिना उनके लिए श्वास-प्रश्वास तक का लेना असह्य था।"

—श्री परशुराम चतुर्वेदी

मीराँ के पद

बस्याँ म्हारे णेणण माँ नँदलाल।
मोर मुकट मकराकृत कुंडल अरुण तिलक सोहाँ भाल।
मोहण मूरत साँवराँ सूरत णेणा बणया विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजाँ उर बैजंतां माल।
मीराँ प्रभु संतां सुखदायाँ, भक्त बछल गोपाल॥

आली री म्हारे णेणाँ बाण पड़ी ।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी ।
कब री ठाढ़ी पंथ निहाराँ, अपणे भवण खड़ी ॥
अटक्याँ प्राण साँवरो प्यारो, जीवण मूर जड़ी ।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्यां बिगड़ी ॥

म्हाँ गिरधर आगाँ नाच्याँरी ।
णाच णाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीत पुरातन जाँच्याँ री ॥
स्याम प्रीत री बाँधि घूंघरयाँ मोहण म्हारो साँच्यारी ।
लोक लाज कुलरा मरज्यादाँ जगमाँ णकणा राख्यांरी ॥
प्रीतम पल छब णा बिसरावां, मीराँ हरि रंग राच्यांरी ॥

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णा कूयाँ ।
दूसरा णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जू यां ॥
भाया छाँड्या, बँधा छाँड्याँ, छाँड्या सगाँ सूयाँ ।
साधाँ ढिग बेठ बेठ, लोक लाज खूयाँ ।
भगत देख्याँ राजी ह्यायाँ, जगत देख्याँ रूयाँ ॥
असवाँ जल सींच सींच प्रेम बेल बूयाँ ।
दध मथ घृत काढ़ लयाँ डार दया छूयाँ ।
राणा बिषरो प्याला भेज्याँ, पीय मगण हूयाँ ।
मीराँ री लगण लग्याँ होणा हो जो हूयाँ ।

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ ।
रैणदिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ ज्यूँ वाहि रिझाऊँ ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ ।
जहाँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ ॥

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय॥

जोगिया से प्रीत कियाँ दुख होइ।
प्रीत किया सुख ना मोरी सजनी, जोगी मीत न कोइ।
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ बिनि मोइ।
ऐसी सूरत या जग माहीं फेरि न देखी सोइ।
मीराँ रे प्रभु कबरे मिलोगे, मिलियाँ आँणद होइ॥

सखी म्हारी नींद नसानी हो।
पिया रो पंथ निहारत सब रैण बिहानी हो॥
सखियन सब मिल सीख दयाँ मन एक न मानी हो।
बिन देख्याँ कल ना पडाँ मन रोस णा ठानी हो।
अङ्ग खीण ब्याकुल भयाँ मुख पिय पिय वाणी हो।
अन्तर वेदन विरह री म्हारी पीड़ णा जाणी हों।
ज्यूँ चातक घणकूँ रटै, मछरी ज्यूँ पाणी हो।
मीराँ ब्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसराणी हो॥

साजन म्हारे घरि आया हो।

जुगाँ जुगाँ री जोंवताँ, बिरहणी पिव पाया, हो।
रतन करा नेवछावराँ, ले आरत साजाँ, हो।
प्रीतम दिया सनेसड़ा, म्हारो घणों णेवाजाँ, हो।
पिय आया म्हारों साँवरा, अङ्ग आणंद साजाँ, हो।
हरि सागर सूँ नेहरो, नैणाँ बंध्या सनेह, हो।
मीराँ रे सुख सागराँ म्हारे सीस बिराजाँ, हो॥

सेनापति

कवि-परिचय

सेनापति अनूपशहर के निवासी थे। इनका जन्म संवत् १६४६ विक्रमी के लगभग हुआ था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गंगाधर और गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। इन्होंने अपना परिचय निम्नांकित छन्द में दिया है—

दीक्षित परशुराम दादा है विदित नाम,
जिन कीन्हें यज्ञ, जाकी विपुल बड़ाई है।
गंगाधर पिता गंगाधर के समान जाके,
गंगातीर बसती 'अनूप' जिन पाई है॥
महा जानमनि, विद्यादान हूँ में चिंतामनि,
हीरामनि दीक्षित ते पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कबि कान दै सुनत कबिताई हैं॥

ऐसा ज्ञात होता है कि ये अधिकांशतः मुसलमानी दरबारों में रहे, किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में ये वैराग्य की ओर झुक गए थे और मुसलमानी दरबार में इन्हें कोई रस नहीं रह गया था, जैसा कि इन पंक्तियों से व्यक्त होता है—

चारि बरदानी तजि पाय कमलेच्छन के,
पायक मलेच्छन के काहे को कहाइए।

अन्तिम जीवन का वैराग्य-सूचक कवित्त नीचे दिये जा रहा है—

महामोह कंदनि में जगत जकंदनि में,
दिन दुःख दंदनि में जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है कलेस सब भाँतिन को,
'सेनापति' याही तें कहत अकुलाय कै॥

आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं,
डारौं लोकलाजि के समाज बिसराय कै।
हरिजन पुञ्जनि में वृन्दावन कुञ्जनि में,
रहौं बैठि कहूँ तरवर तर जाय कै॥

इन्होंने 'काव्यकल्पद्रुम' और 'कवित्तरत्नाकर' की रचना की। 'कवित्तरत्नाकर' इनका अन्तिम ग्रन्थ है और यही उपलब्ध है।

काव्य में

सेनापति एक रसिक और प्रतिभावान् कवि थे। थे तो राम के उपासक जैसा कि इन्होंने 'सीतापति' 'सीताराम' आदि को अपने भक्ति-पूर्ण कवित्तों में खूब दुहराया है, किन्तु ये कवि का हृदय अधिक लिए हुए थे। प्रकृति की विविध रंगात्मक लीला ने इनकी प्रवृत्ति को अधिक आकर्षित किया। अतएव इनके कवि-हृदय की धारा प्रकृति के ऋतुवर्णन की ओर बह चली। प्रधान रूप से इसी वर्णन को लेकर इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ कवित्तरत्नाकर की रचना हुई।

'कवित्तरत्नाकर' जैसा कि नाम से व्यक्त है, कवित्तों का सागर है। ये कवित्त भाषा और भाव की दृष्टि से बड़े ही उत्तम कहे जायेंगे। रीति-कालीन कवियों में इतने सुन्दर शब्दचमत्कार-लयपूर्ण कवित्तों की रचना अल्प कवियों में कठिनाई से मिलेगी। भाषा इनकी ब्रज ही है। यह भाषा बड़ी ही मर्मस्पर्शिनी, प्रांजल और साहित्यिक है। भावों की सुन्दरता भाषा के शरीर में इस प्रकार गुँथी हुई है कि दोनों के संयोग ने कवि की अभिव्यक्ति को मनोमोहक बना दिया है।

चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति इनके काव्य में सर्वत्र मिलेगी। किन्तु इस चमत्कार-प्रदर्शन ने कहीं भी काव्य-प्रवाह में आघात नहीं पहुँचाया है। कवित्तों में अनुप्रास, श्लेष, रूपक, उपमा, यमक आदि अलंकारों की भरमार मिलेगी किन्तु इनके अस्तित्व ने काव्य को उत्तम ही बनाया

है, नीरस और कष्टसाध्य नहीं। काव्य में अलंकारों के आगमन से ऐसे दोष नहीं आए हैं जो काव्य को असुन्दर और कठिन तथा दुरूह बनावें। काव्य में ओज और माधुर्य गुणों का बाहुल्य है। शब्दों का चयन सुन्दर भावानुकूल हुआ है। नवीन कल्पनाओं को अलंकार-प्रदर्शन में लाने से काव्य की रोचकता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। कविता की दृष्टि से "कवित्त-रत्नाकर" हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य निधि है। सेनापति ललित श्लेषपूर्ण काव्य-रचना में अद्वितीय हैं।

समीक्षक

"भाषा पर ऐसा अच्छा अधिकार कम कवियों का देखा जाता है। अनुप्रास और यमक की प्रचुरता होते हुए भी कहीं भद्दी कृत्रिमता नहीं आने पाई है। इनकी रचना बहुत ही प्रौढ़ और प्रांजल है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

षट् ऋतु-वर्णन

ग्रीष्म

वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि तपै,
ज्वालनि के जाल बिकराल बरखत हैं।
तचति धरनि जग झुरत झरनि, सीरी
छाँह को पकरि पंछी-पंछी बिरमत हैं॥
'सेनापति' नेक दुपहरी ढ़रकत होत,
घमका बिषम जो न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौन सीरी ठौर को पकरि कौनो,
घरी एक बैठि कहूँ घामैं बितवत हैं॥
'सेनापति' उवैं दिनकर के चलत लुवैं,
नदी-नद-कुवैं कोपि डारत सुखाइकै।
चलत पवन मुरझात उपबन-बन,
लाग्यौ है तपन जरयौ भूत लौं तचाइकै॥
भीखम तपत ऋतु ग्रीषम, सकुच तातें,
सीकर चपत तहखाननि में जाइकै।
मानो सीतकाल सीतलता के जमाइबे को,
राखे हैं बिरंचि बीज धरा में छिपाइकै॥

वर्षा

'सेनापति' उनए नए जलद सावन के,
चारिहू दिसनि घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात केहूँ भाँति,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ कै॥

घन सों गगन छयो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मानो रबि मयो खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा को भरम मानि,
मेरी जान, याही ते रहत हरि सोइ कै॥

शरद्

खण्ड खण्ड सब दिग-मंडल जलद सेत,
'सेनापति' मानो शृङ्ग फटिक पहार के।
अम्बर अडम्बर सों घुमड़ि-घुमड़ि छन,
छिछि कै छछोरे छिछि अछिन उछार कै॥
सलिल सहल, मानो सुधा के महल, नभ
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब को साजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग-गग गाजत गगन घन क्वार के॥
कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति 'सेना-
पति' है सुहाति, सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही,
राम को सो जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीरसागर मगन है॥

हेमन्त

सीत को प्रबल 'सेनापति' कोपि चढ़्यो दल,
निबल अनल दूरि गयो सियराइ कै।

हिम के समीर तेई बरखैं बिखम तीर,
रही है गरम भौन-कोननि में जाइकै ॥
धूम नैन बहैं, लोग होत हैं अचेत तऊ,
हिय सों लगाइ रहे नेक सुलगाई कै।
मानो भीत जानि महा-सीत सों पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यो पावक छिपाइ कै ॥६॥

शिशिर

सिसिर तुखार के बुखार सों उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ-पाँय ठिरि कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' गाई कछु सोचिकै सुमिरि कै।
सीत तें सहसकर सहस-चरन ह्वैकै,
ऐसे जात भाजि, तम आवत है घिरिकै।
जो लौं कोकी कोक को मिलति तोलौं होति राति,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरिकै ॥
सिसिर में ससि को सरूप पावै सविताहू,
घाम हूँ में चाँदनी की दुति दमकति है।
'सेनापति' होति है सीतलता सहसगुनी,
रजनी की छाईं बासर में झमकति है ॥
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को,
ससि-संक पंकजनी फूलि न सकति है ॥

वसन्त

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विलास संग,
स्याम रंगमयी मानो मसि में मिलाए हैं।
तहाँ मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुञ्ज,
मलय पवन उपबन-बन धाए हैं।
'सेनापति' माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाव कविता के मन आए हैं।
आधे अंग सुलगि सुलगि रहे, आधे मानो
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं॥

३—रीतिकालीन परम्परा के कवि

प्रमुख कवि—

सेनापति, केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, रत्नाकर।

विशेषताएँ

(१) प्रायः सभी ने राज-दरबारों के आश्रित रहकर काव्य तथा साहित्य की साधना की।

(२) अलंकार, पिंगल, शृंगार, प्रकृति का प्रेमजनीन उद्दीपक स्वरूप तथा व्यक्तिगत प्रशंसा आदि कलापक्षीय प्रेरणाओं ने सभी रीतिकालीन कवियों को आकृष्ट किया।

(३) सभी ने आलंकारिक शैली का सहारा लिया। प्राचीन विविध छंदों तथा अलंकारों को सिद्ध करने पर लेखनी चलाई।

(४) प्रायः सभी ने 'ब्रजभाषा' को काव्य-भाषा बनाया।

(५) 'शृंगार' रस के प्रतिपादन की प्रधानता रही।

(६) प्रायः सभी में व्यक्तिगत यश-वैभव की लालसा और पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति रही।

विशिष्ट ग्रन्थ

कवित्तरत्नाकर, रामचन्द्रिका, बिहारी-सतसई, प्रेम-चंद्रिका, जगत्-विनोद और उद्धवशतक हैं।

केशवदास

जीवन वृत्त

केशवदास का जन्म संवत् १६१२ विक्रमी में माना जाता है। इन्होंने अपना कुछ परिचय 'कविप्रिया' में दिया है। इसके अनुसार ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके बाबा का नाम कृष्णदत्त और पिता का नाम काशीनाथ था। इनका बाल्यकाल ओड़छा में ही बीता। इनको संस्कृत विद्या का अच्छा अभ्यास था। पिंगलशास्त्र में इनकी विशेष अभिरुचि थी। इनके कुटुम्ब में पंडितों की परम्परा अच्छी होती आई थी। उसी सम्पर्क से इन्हें भी संस्कृत-साहित्य का रस मिला। ओड़छा-नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह की सभा में यह रहते थे। इनका उस दरबार में बड़ा मान था। ओड़छा के निवासी होने के कारण इन्हें उस भूमि से बड़ा प्रेम था। "नदी बेतवे तीर जहँ तीरथ तुङ्गारन्य। नगर ओड़छो बहुबसै धरनीतल में धन्य।" ऐसा ज्ञात होता है कि ३५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'रसिकप्रिया' नाम का ग्रन्थ समाप्त किया। एक बार महाराज बीरबल इनके काव्य पर बहुत मुग्ध हुए और इन्हें पर्याप्त धन तथा राज्य-गौरव से विभूषित किया। महाराज इन्द्रजीत सिंह तो इन पर इतने मुग्ध थे कि एक बार गंगाजी में खड़े होकर केशवजी से वर माँगने को कहा—"इन्द्रजीत तासों कह्यौ, माँगन मध्य प्रयाग। माँग्यो सब दिन एक रस कीजै कृपा समाज।" इन्हें अब धन आदि का लालच न था, केवल यश के लोभी थे।

इन्होंने संवत् १६५८ वि० तक 'रामचन्द्रिका' की समाप्ति की थी और संवत् १६६७ में 'विज्ञान गीता' लिख डाली। संवत् १६७४ के

लगभग इनका देहावसान हुआ। केशवदासजी के बुढ़ापे का रचा हुआ एक दोहा अति प्रसिद्ध है—"केसव केसनि अस करी जस अरिहू न कराहिं। चन्द्रवदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥" केशवदास पण्डित होने के साथ ही साथ बड़े रसिक थे। ये ऐसे प्रसिद्ध कवि थे जिनका राज-सम्मान जितने अधिक अंश में हुआ, उतना अन्य का नहीं।

काव्य में केशव

केशवदास ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में रीतिकाव्य की परम्परा डाली। इस युग में काव्य हृदय-पक्ष से निकल कर विशेष रूप से कला-पक्ष में विलास कर रहा था। काव्य की सृष्टि राजदरबारों में विलास और मनोरंजन की वस्तु बन गई थी। काव्य का साधारण जनता से स्पर्श छूट गया था और इसी कारण उच्च जीवन-सम्बन्धी प्रेरणाओं का अभाव इस युग में हम स्पष्टतः देखते हैं। रीतिकालीन कवियों को हम प्रायः अलंकार और पिंगल अर्थात् काव्य के कला-पक्ष की सीमा पर विचरते हुए पाते हैं। अतएव संस्कृत के अलंकार और लक्षण ग्रन्थ महाकवि केशवदास के लिए प्रेरक बने और राजदरबारी भूमि और विलासिता की सामग्रियाँ उनके साधन बने। बस, केशव के काव्य की यही पृष्ठ-भूमि थी।

केशवदास 'कठिन-काव्य के प्रेत' कहे जाते हैं। उनके काव्य में सरसता और प्रबन्ध-प्रवाह के अभाव तथा प्रसाद गुणों से रहित शब्दावली के कारण उनका काव्य अवश्य कठिन और नीरस लगता है। किन्तु 'रामचन्द्रिका' में उनके संवादस्थल विशेष अच्छे बन पड़े हैं। ऐसे स्थलों पर उत्साह और क्रोध आदि की व्यंजना अति सुन्दर हुई है। इसके अतिरिक्त केशवदास ने अलंकारों तथा छन्दों के इतने उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जितने अन्यत्र मिलना कठिन है। कला-पक्ष की विशेषता ही उनकी प्रधान देन है। कहीं-कहीं पर वाग्वैदग्ध्य के चित्र अति सुन्दर

मिलते हैं। उनके शब्दों का चयन प्रायः ओज गुण से युक्त है। इन्होंने अपनी कृतियों में विभिन्न छन्दों वाली काव्यपद्धति प्रयुक्त की है। रामचन्द्रिका तथा अन्य कृतियों में इन्होंने संस्कृत ग्रन्थों से बहुत कुछ लिया है। इनकी कविता में छन्दों का ही बाहुल्य है। काव्याङ्गों का विस्तृत तथा विविध परिचय देना ही इनका विशेष कार्य है। केशवदास के रचित सात ग्रन्थ मिलते है—कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, विज्ञान-गीता, रतनबावनी, जहांगीर-जस-चन्द्रिका।

समीक्षकों की दृष्टि में

"केशवदास ने 'रसिक प्रिया' और 'कविप्रिया' तथा 'रामचान्द्रका' में अपना पूरा आचार्यत्व प्रकट किया है। इनको पढ़ने से मनुष्य कविता का विषय बहुत कुछ जान सकता है। कविता के जिज्ञासुओं को काव्य सीखने में ये ग्रन्थ बड़े उपयोगी हैं।"

—'मिश्रबन्धु'

"केशव की रामचन्द्रिका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। वे उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के प्रेमी थे। उनमें आलंकारिक चमत्कार की प्रवृत्ति विशेष-रूप से पाई जाती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

शत्रुघ्न का लव-कुश से युद्ध

बिस्वामित्र बसिष्ठ सों एक समय रघुनाथ!
आरंभ्यो केसव करन अस्वमेध की गाथ॥
मैथिली समेत तौ अनेक दान. मैं दियो।
राजसूय आदि दै अनेक जज्ञ मैं कियो॥
सीय-त्याग पाप ते हिये सु हौं महा डरौं।
और एक अस्वमेध जानकी बिना करौं॥
धर्म कर्म कछु कीजई सफल तरुनि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई निष्फल सोई नाथ॥

करिये युत भूषण रूपरयी। मिथिलेससुता एक स्वर्णमयी॥
ऋषिराज सबै ऋषि बोलि लिये। सुचि सों सब यज्ञ विधान किये॥
हयसालन ते हय छोरि लियो। ससि बर्न सो केसव सोभ रयो॥
स्रुति स्यामल एक बिराजतु हैं। अलि स्यों सरसीरुह लाजतु है॥

पूजि रोचन स्वच्छ अच्छत पट्ट बाँधिय भाल।
भूषि भूषन सत्रुदूषन छोड़ियो तेहि काल॥
सङ्ग लै चतुरङ्ग सैनहि सत्रुहंता साथ।
भाँति भाँतिन मान दै पठये सु श्रीः रघुनाथ॥
जात है जित बाजि केसव जात हैं तित लोग।
बोलि बिप्रन दान दीजत यत्र सत्र सभोग॥
बेनु बीन मृदङ्ग बाजत दुंदुभि बहु भेव।
भाँति भाँतिन होत मङ्गल देव से नरदेव॥

राघव की चतुरङ्ग चमू चय को गनै केसव राजसमाजनि।
सूर तुरङ्गन के उरझैं पग तुङ्ग पताकनि की पट साजनि॥
टूटि परैं तिनतें मुकुता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि।
बिंदु किधौं मुख-फेनन के किधौं राजसिरी स्रव मङ्गल लाजनि॥

राघव की चतुरङ्ग चमू चपि धूरि उठी जलहू थल छाई।
मानो प्रताप हुतासन धूम सो केसवदास अकास न माई॥
मेंटिकै पञ्च भभूत किधौं बिधि रेनुमयी नवरीति चलाई।
दुःख निवेदन को भुव भार को भूमि किधौं सुरलोक सिधाई॥
नाद पूरि धूरि पूरि तूरि बन चूर गिरि,
सोखि-सोखि जल भूरि-भूरि थल गाथ की।
केसोदास आसपास ठौर-ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपने ही हाथ की॥
उन्नत नवाय, नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविकाऽतिमित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दिसि दिसि जीति सेना रघुनाथ की॥
दिसि बिदिसिन अवगाहि कै सुख ही केसवदास॥
बालमीकि के आस्तमहिं गयो तुरङ्ग प्रकास॥
दूरिहि ते मुनि-बालक धाये। पूजित बाजि बिलोकन आये।
भाल के पट्ट जहीं लव बांच्यो। बाँधि तुरङ्गम जयरस राँच्यो॥
घोर चमू चहुँ ओर ते गाजी। कौनेहि रे यह बाँधियो बाजी॥
बोलि उठे लव मैं यहि बाँध्यो। यों कहि कै धनुसायक साँध्यो॥
मारि भगाय दिये सिगरे यों। मन्मथ के सर ज्ञान घने ज्यों॥
योद्धा भगे बीर शत्रुघ्न आये
कोदण्ड लीन्हे महारोष छाये॥
ठाढ़े तहाँ एक बालै बिलोक्यो।
रोक्यो तहीं जोर नाराच रोप्यो॥
बालक छाँड़ि दे छाँड़ि तुरङ्गम।
तो सों कहा करौं संगर सङ्गम॥
ऊपर वीर हिये करुनारस।
वीरहिं बिप्र हते न कहूँ जस॥

कछु बात बड़ी न कहो मुख थोरे।
लव सों न जुरो लवनासुर भोरे॥
द्विज दोषन ही बल ताहि संहारयो।
मरही जु रह्यो सु कहा तुम मारयो॥

राम-बन्धु बान तीन छोड़ियो त्रिसूल से।
भाल में बिसाल ताहि लागियो ते फूल से॥
घात कीन्ह राज-तात गात तैं कि पूजियो।
कौन शत्रु तू हत्यो जो नाम शत्रुहा लयो॥
रोष करि बान बहु भाँति लव छाँडियो।
एक ध्वज, सूत युग, तीन रथ खंडियो॥
सस्त्र दसरत्थसुत अस्त्र कर जो धरे।
ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरे॥

रिपुहा तब बान वहै कर लीन्हों।
लवणासुर को रघुनंदन दीन्हों॥
लव के उर में उरझ्यो वह पत्री।
मुरझाय गिरयो धरनी महँ छत्री॥

मोहे लव भूमि परे जबहीं। जै दुंदुभि बाजि उठे तबहीं।
भू ते रथ ऊपर आनि धरे। सत्रुघ्न सु यों करुनाहिं भरे॥
घोड़ो तबही तिन छोरि लयो। सत्रुघ्नहिं आनन्द चित्त भयो॥
लै के लव को ते चले जबहीं। सीता पहँ बाल गये तबहीं॥

सुनु मैथिली नृप एक को लव बाँधियो बर बाजि।
चतुरंग सेन भगाइ कै सब जीतियो वह आजि॥
उर लागि गो सर एक को भुव मैं गिरो मुरझाय।
तब बाजि लै लव लै चल्यो नृप दुंदुभीन बजाय॥

सीता गीता पुत्र की सुनि के भई अचेत।
मनो चित्र की पुत्रिका मन क्रम बचन समेत॥

रिपुहाथ श्री रघुनाथ को सुत क्यों परो करतार।
पतिदेवता सब काल तौ लव जी उठै यहि बार॥
ऋषि हैं नहीं कुस है नहीं लव लेइ कौन छुड़ाय।
बन माँझ टेर सुनी जहीं कुस आइयो अकुलाय॥

रिपुहिं मारि संहारि दल जन तें लेहुँ छँड़ाय।
लवहिं मिले हौं देखिहौं माता तेरे पाँय॥

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बर सो बर पेरयो।
दाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेरयो॥
साल समूल उखारि लिये लवनासुर, पीछे ते आय सो टेरयो।
राघव को दल मत्त करीस्वर अंकुस दै कुस केसव फेरयो॥

कुस की टेर सुनी जहीं फूलि फिरे शत्रुघ्न।
दीप विलोकि पतङ्ग ज्यों यदपि भयो बहु विघ्न॥

रघुनन्दन को अवलोकत ही कुस।
उर माँझ हयो सर सुद्ध निरंकुश॥
गिरे रथ ऊपर लागत ही सर।
गिरि ऊपर यों गजराज कलेवर॥

जूझि गिरे जबही अरिहा रन। भाजि गये तबही भट के गन॥
काढ़ि लियो जबही लव को सर। कंठ लग्यो तबही उठि सोदर॥

मिले जु कुस लव कुसल सों, बाजि बाँधि तरुमूल।
रन महिं ठाढ़े सोभिजैं, पसुपति गनपति तूल॥

स्फुट छन्द

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाइ,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भई?
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज, तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न केहूँ लई?
भावी, भूत वर्त्तमान जगत बखानत है,
'कैसौदास' कहूँ न बखानी काहू पै गई,
पति कहै चारि मुख, पूत कहै पाँच मुख,
नाती कहै षटमुख, तदपि नई नई॥

परशुराम-क्रोध

बर बान सिखीन असेष समुद्दहिं सोखि सखा सुख ही तरिहौं;
पुनि लंकहि औटि कलंकित कै फिरि पंक कलंकहि को भरिहौं।
भलि भूंजिकै राकस खाकस कै दुख दीरघ देवन को हरिहौं;
सितिकंठ के कंठन को कठुला दसकंठ को करिहौं॥

भरत का चित्रकूट-गमन

जुद्ध को आजु भरत्थ चढ़े धुनि दुन्दुभि की दसहूँ दिसि छाई;
प्रात चली चतुरंग-चमू बरनी सुनु 'केसव' कैसेहुँ जाई।
यों सब के तनत्रानन पै, झलकी अरुनोदय की अरुनाई;
अंतर तें जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई॥

पंचवटी

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जह एक घटी,
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी, जग जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी, निगटी प्रगटी गुरु ज्ञान गटी,
चहुँ ओरन नाचति मुक्ति नटी, गुन धूरजटी जटी पंचवटी॥

मन

पेट चढ़्यो, पलना, पलिका चढ़ि, पालकि हूँ चढ़ि मोद मढ़्यो रे,
चौक चढ़्यो, चितसारी चढ़्यो, गज बाजि चढ़्यौ चढ़ि गर्व गढ़्यो रे।
व्योम विमान चढ़्यौई रहै, कहि 'केसव' सो कबहूँ न पढ़्यो रे,
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त, सु चाहत मूढ़ चिता हू चढ़्यो रे॥

बिहारीलाल

जीवन-परिचय

महाकवि बिहारी के जीवन-चरित के विषय में भी बहुत कम बातें ज्ञात हुई हैं। इन्होंने एक ही ग्रन्थ 'सतसई' नामक रचा, जिसके विषय में कुछ सूचना हमें उनके निम्नांकित दोहे से मिलती है:—

संवत् ग्रह ससि जलधि छिति छठि तिथि बासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में पूरन आनँद कन्द॥

उनके जीवन के विषय में दो दोहे प्रचलित हैं:—

जनम लियो द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराय॥
जनम ग्वालियर जानिए, खंडबुँदेले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

बिहारी का जन्मस्थान बसुआ गोबिन्दपुर नामक ग्राम बताया जाता है, जो ग्वालियर के निकट है। इनका जन्म अनुमानतः संवत् १६६० विक्रमी माना जाता है। इन्होंने संवत् १७१९ में 'सतसई' की रचना समाप्त की। इस रचना के कुछ वर्ष पश्चात् ही इनका देहावसान हुआ होगा। इस समय इनकी अवस्था लगभग ६० वर्ष की रही होगी।

जैसा कि उक्त दोहे से प्रकट होता है इनका निवास अपनी ससुराल मथुरा में भी रहा, जहाँ के वातावरण ने इन्हें सरस काव्य की ओर प्रेरित किया होगा।

कहते हैं, एक बार जब इन्हें ज्ञात हुआ कि जयपुर के राजा जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने अनुरक्त रहते हैं कि बाहर या दरबार में आते ही नहीं तो इन्होंने यह दोहा बनाकर किसी प्रकार राजा जयसिंह के पास पहुँचा दिया:—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु यहि काल।
अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

जब यह चुभता हुआ दोहा राजा जयसिंह ने पढ़ा तो उनपर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पडा और उन्होंने पूर्ववत् राज-काज में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। राजा जयसिंह ने बिहारी का बड़ा सम्मान किया और कहते हैं कि उन्होंने बिहारी का ऐसे ही और प्रति दोहे की रचना पर एक-एक अशर्फी पुरस्कार देने का वचन दिया। जो कुछ भी हो, राज-दरबार में बिहारी का मान अवश्य बढ़ गया और इसी प्रेरणावश उन्होंने 'सतसई' की रचना की। इस ग्रंथ में ७१९ दोहे हैं।

काव्य में बिहारी

बिहारी रीतिकालीन युग के एक लब्धप्रतिष्ठ कवि थे। इस युग में कविता प्रायः राजदरबारों में ही पोषित होती थी। अतएव राजदरबारों के उपयुक्त शृङ्गार की कविता का ही अधिक प्रचलन था। कवि और काव्यकारों का सम्बन्ध साधारण जनता की भावनाओं से अधिक प्रेरित नहीं रहा, इसीलिए हम इस युग के काव्य में अधिकतर शृंगार रस के ही दर्शन करते हैं।

'सतसई' लिखने का प्रचलन संस्कृतसाहित्य से अवतरित था। बिहारी ने भी उसी परम्परा में एक सुन्दर कड़ी जोड़ी। बिहारी-सतसई शृंगार रस-प्रधान ग्रन्थ है। यद्यपि अन्त में कुछ दोहे नितान्त भक्तिरस से ओतप्रोत हैं। बिहारी ने यद्यपि केवल यही ग्रन्थ रचा, किन्तु अपने रचना-वैशिष्ट्य और उत्कृष्ट काव्य-सौन्दर्य के कारण इस ग्रन्थ का इतना मान हुआ है कि इसका अनुवाद हिन्दी से अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी तथा कई अन्य विदेशीय भाषाओं में हो चुका है। इसके अतिरिक्त टीकाकारों ने भी इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में इतना अधिक लिखा है कि अलग 'बिहारी साहित्य' ही खड़ा हो गया है। अपने गुणों के कारण यह ग्रन्थ साहित्य में अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। बिहारी के इस

ग्रन्थ में मुक्तक कविता मिलेगी। प्रत्येक दोहा एक-दूसरे से भिन्न है। इन दोहों में ब्रजभाषा का माधुर्य, संस्कृत की समाहार शक्ति, भाषा की सशक्तता, कल्पना की विचित्र सूझ, व्यक्तीकरण का विशिष्ट प्रवाह और वर्णित विषय की सारगर्भिता इतने उत्कृष्ट पैमाने पर मिलेगी जितना अन्यत्र पाना दुर्लभ है। कवि ने एक लम्बे और ऊँचे भाव को दोहे की छोटी काया में रखकर 'गागर में सागर' भरने का उदाहरण सफल रूप से चरितार्थ किया है। दोहे का एक-एक शब्द नाना भावों की सुन्दर व्यंजना करता है। शब्द-योजना में बिहारी ने जिस प्रकार के कुशल शिल्पी का परिचय दिया है उतनी पटुता हिन्दी-साहित्य में कहीं न मिलेगी। एक शब्द दूसरों के साथ जुड़ कर इस प्रकार अनेक भावों की ध्वनि करता जाता है कि पाठक आनन्द की धारा में बह चलता है। बिहारी का कार्य विलक्षण ध्वनिपूर्ण है। कवि की उत्कृष्ट कल्पना, अनुभव-गम्य सूक्ष्म दृष्टि और कवि-कल्पना को व्यंजित करने की क्षमता देखकर आश्चर्य होता है।

भाव-व्यंजना के अतिरिक्त रस-व्यंजना और वस्तुव्यंजना में भी कवि ने कमाल करके ही दिखाया है। शोभा, कान्ति, सुकुमारता, विरह, प्रतीक्षा, नेत्र, अधर, वस्त्र, पैर, हाथ, चितवन आदि प्रसंगों की रचनाएँ पाठक को इतना मनोमुग्ध कर डालती हैं कि पाठक हजार बार पढ़ कर और गुन कर भी दोहे का पढ़ना और गुनना नहीं छोड़ता है। अलंकारों की भी योजना में भी बिहारी उतने ही चतुर हैं जितने शब्द-चयन में। बिहारी ने नीतिपरक दोहे भी उतनी ही सुन्दरता से लिखे हैं जितने शृंगारपरक। 'बिहारी सतसई' अपने आप में इतनी पूर्ण और उत्कृष्ट रचना है कि इसके विषय में जो कुछ भी कहा जाय थोड़ा ही है। यह बात नितान्त सत्य है—

सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर॥

समीक्षकों की दृष्टि में

"जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समासशक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा—यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से वर्त्तमान थी।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"सतसैया के दोहरों का यह छोटा सा खजाना पाठक को चकित और स्तंभित कर देता है। इतने छोटे से ग्रन्थ में इतना चमत्कार अन्य कोई भी हिन्दी कवि नहीं भर सका।"

—'मिश्रबन्धु'

"बिहारीलाल चतुर चित्रकार की भाँति दो ही चार सजीव शब्द रूपी कूचियों के प्रयोग से अपने दोहा-चित्र को ऐसा चमचमा देते हैं कि साधारण रूप भी परम सुन्दर चित्रित दृष्टिगत होने लगता है। वे प्रतिभावान् कवि थे।"

—पं० कृष्णबिहारी मिश्र

दोहे

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ॥१

तन्त्री नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग ॥२

पत्रा ही तिथि पाइयत, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहै, आनन ओप उजास ॥३

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन है जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ॥४

कनक-कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात नर, यह पाये बौराय ॥५

अधर-धरत हरि के परत, ओठ दीठि पट जोति।
हरे बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-रँग होति ॥६

जहाँ, जहाँ ठाढ़्यो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूँ बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुँ वहि ठौर ॥७

तौ लगि या मन-सदन में हरि आवैं केहि बाट।
बिकट जटे जौ लौं निपट, खुलैं न कपट कपाट ॥८

कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगत तपोबन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥९

जिन दिन देखे वै कुसुम, गई सु-बीति बहार।
अब अलि रहीं गुलाब में, अपत कँटीली डार ॥१०

इहै आस अटक्यो रह्यो, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं लेरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल ॥११

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥१२

इक भीजैं चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, बै-नै चढ़ती बार ॥१३

चिरजीवौ जोरी जुरे, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये बृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥१४

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल ॥१५

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग-पग होत प्रयागु ॥१६

को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों-त्यों उरझत जात ॥१७

कौन भाँति रहिहै बिरद, अब देखिबी मुरारि।
बीचे मोसों आनि के, गीधे गीधहिं तारि ॥१८

बड़े न हूजै गुननि बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥१९

बढ़त-बढ़त संपति सलिल, मन-सरोज बढ़ि जाय।
घटत-घटत नहिं पुनि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥ २०

दिन दस आदर पायके, करिलै आप बखान ।
लो लगि काग सराध पख, तौ लगि तो सनमान ॥ २१
पटु पाँखैं भखु काँकरे, सदा परेई संग ।
सुखी परेवा पुहुमि में, तूही एक बिहंग ॥ २२
स्वारथ सुकृत न, श्रम वृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि, तू पंछीन न मारि ॥२३
दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन हिएँ, दई नई यह रीति ॥ २४
नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥ २५

फिर भी घनाक्षरी छन्द इन्हें अधिक प्रिय प्रतीत होता था। देव की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। भाषा की कोमलता और सरसता में यह बहुत बढ़े चढ़े हैं। इनकी भाषा में श्रुति-कटु शब्द नहीं मिलते हैं। इनकी भाषा में अनुप्रासों की अधिकता है। इसके अतिरिक्त इनकी भाषा में प्रसाद, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति आदि गुण विशेष रूप से मिलते हैं। इनकी कविता में उपमा और रूपक अलंकार अधिकतर मिलते हैं। 'देव' ने प्रकृति का वर्णन बड़ी ही भावुकता से किया है। सुन्दर शब्दों द्वारा वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने में ये बहुत प्रवीण हैं। वर्षा, वसन्त, प्रातःकाल केसम्बन्ध मे लिखे गए इनके छन्द स्मरणीय हैं।

समालोचकों की दृष्टि में

'देव की कविता में जो गुण हैं वे अद्वितीय हैं। ऐसी बढ़िया कविता किसी कवि के किसी ग्रन्थ में, एक स्थान पर नहीं पाई जाती।"

—'मिश्रबन्धु'

"कवित्वशक्ति और मौलिकता देव में खूब थी। इनका-सा अर्थ-सौष्ठव बिरले ही कवियो में मिलता है। रीतिकालीन कवियों में ये बड़े ही प्रतिभासम्पन्न कवि थे, इसमें सन्देह नहीं।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

कविताएँ

ऐसी हौं जु जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ - पाँय तेरे तोरतो;
आजु लगि कत नरनाहन की 'नाहीं' सुनि,
नेह सों निहारि हारि, बदन निहोरतो।
चलन न देतो 'देव' चंचल, अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो;
भारो प्रेम पाथर, नगारो दै, गरे सों बाँधि,
राधा-बर-बिरद के बारिधि में बोरतो॥
कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन, अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनी, कलंकिनी, कुनारी हौं;
कैसो नरलोक, परलोक, बर-लोकन मैं,
लीन्ही मैं अलीक, लोक-लोकन ते न्यारी हौं।
तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौं।
वृन्दाबन-वारी बनवारी की मुकुट-वारी,
पीत-पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥

(जातिविलास)

पाँयनि नूपुर मंजु बजै, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई;
साँवरे-अंग लसै पट-पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुखचंद जुन्हाई;
जै जग-मंदिर-दीपक, सुंदर श्रीब्रज-दूलह 'देव' सहाई।

(रसविलास)

पावस-वर्णन

सुनि कै धुनि चातक-मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल-कूकन सों;
अनुराग-भरे हरि बागन मैं सखि रागत राग अचूकन सौं ॥
कवि 'देव' घटा उनई जु नई, बन-भूमि भई दल-दूकन सों।
रँग-राति हरी हहराति लता, झुकि जाति समीर के झूकन सौं ॥

(प्रेम चंद्रिका)

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,
तामैं तीनौं लोक बूड़ि गये एक संग मैं।
कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित्तभंग मैं।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि,
जंबू-रस बुन्द जमुना जल तरंग मैं;
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम रंग मैं ॥
वारौं कोटि इंदु अरबिंदु रसबिंदु पर,
मानै ना मलिंद बिंदु सम कै सुधासरो;
मलै, मल्लि, मालती, कदंब, कचनार, चम्पा,
चापेहू न चाहै चित चरन टिकासरो।
पदुमिनि तूही षटपदु को परमपदु,
'देव' अनुकूल्यो और फूल्यो तौ कहा सरो;
रस, रिस, रास, रोस, आसरो सरन, बिसे
बीसौ बिसवास रोकि राख्यो निसि बासरो ॥

रावरो रूप रह्यो भरि नैननि, बैननि के रस सों स्रुति सानों,
गात मैं देखत गात तुम्हारोई, बात तुम्हारिए बात बखानो।
ऊधो, हहा हरि सों कहियो, तुम हौ न इहाँ, यह हौं नहि मानों;
या तन ते बिछुरे तो कहा, मन ते अनतैं जु बसौं तब जानों।

हौं ही ब्रज, बृन्दाबन मोही मैं बसत सदा,
जमुना-तरंग, स्याम रंग अवलीन की;
चहूँ ओर सुन्दर सघन वन देखियत,
कुंजनि में सुनियत गुंजनि अलीन की।
बंसीबट-तट नटनागर नटत मो मैं,
रास के बिलास की मधुर धुनि बीन की;
भरि रही भनक बनक ताल-तानन की,
तनक-तनक तामैं झनक चुरीन की॥

खोरि लौं खेलन आवति ए न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों,
'देव' गुपालहि देखति ए न तौ ये बिरहानल मैं बरती क्यों।
माधुरी मंजु रसाल की बालि सुभाल-सी है उर में अरती क्यों;
कोमल कूकि के कोकिल कूर, करेजनि की किरचैं करती क्यों॥

वसन्त

माधुरे भौंरनि, फूलनि, भौंरनि, बौरनि-बौरनि बेलि बची है;
केसरि, किंसु, कुसुंभ, कुरौ, किरवार, कनैरनि रंग रची है।
फूले अनारनि, चंपक-डारनि लै कचनारनि, नेह तची है;
कोकिल रागनि, नूत परागनि, देखु री बागनि फागु मची है॥

डारद्रुम-पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन-झिंगूला सोहै तन छबि भारो दै;
पवन झुलावै केकी कीर बतरावै 'देव'
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै।
पूरति पराग सौं उतारो करै राई-नौन,
कुंद-कली-नायिका लतान सिर सारी दै;
मदन महीपजू को बालक बसंत, ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै॥

कृष्ण के प्रति

सूनो कै परमपदु, ऊनो कै अनन्त मदु,
दूनो कै नदीसु नदु इंदिरा झुरै परी।
महिमा मुनीसन की, संपति दिगीसन की,
ईसन की सिद्धि, ब्रजबीथी बिथुरै परी।
भादों की अँधेरी अधराति, मथुरा के पथ,
आई मनोरथ, 'देव' देवकी दुरै परी।
पारावार पूरन, अपार, परब्रह्म रासि,
जसुदा के कोरे एक बारक कुरै परी॥

पद्माकर

जीवन-परिचय

पद्माकर जी का जन्म संवत् १८१० वि० में बाँदा में हुआ था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहन लाल था, जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। संवत् १८५६ में ये सतारे के महाराज रघुनाथ राव (राघोबा) के दरबार में गये। यहाँ पर इनका बड़ा सम्मान हुआ। राघोबा के यहाँ से इन्हें हाथी, रुपये तथा भूमि-दान प्राप्त हुआ। पद्माकर यहाँ से जाकर के जयपुर के राजा प्रतापसिंह के यहाँ रहे। प्रतापसिंह के पश्चात् महाराज जगतसिंह के समय में इन्होंने 'जगत-विनोद' की रचना की। दोहों में इनका रचित अलंकार ग्रन्थ 'पद्माभरण' भी इसी काल का ज्ञात होता है। महाराज जगतसिंह के देहावसान के पश्चात् ये ग्वालियर के राजा दौलतराव सिंधिया के दरबार में गए। वहाँ भी इनका बहुत सम्मान हुआ। इन्होंने 'प्रबोध पचासा' और 'रामरसायन' नामक ग्रन्थ और रचे। 'हिम्मत बहादुर-बिरदावली' बाँदा-नरेश हिम्मतसिंह की प्रशंसा में लिखी। जीवन के अन्तिम दिनों में ये कुष्ठ से रोगग्रस्त रहने लगे थे। अतएव कुछ दिन तक ये बाँदा में रहे। पश्चात् गंगातट पर कानपुर चले गए। यहाँ पर ८० वर्ष की आयु में (संवत् १८९० वि० में) इनका देहावसान हो गया।

काव्य-क्षेत्र में

रीतिकालीन कवियों में पद्माकर जी का स्थान अति श्रेष्ठ कवियों में है। बिहारी के बाद पद्माकर जी ही की ख्याति सबसे अधिक थी। पद्माकरजी की शैली इतनी मनोरंजक है कि पाठकों का हृदय मुग्ध कर लेती है। उनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा ही थी, किन्तु उसमें बुन्देलखंडी भी

बड़ी अच्छी तरह से मिश्रित थी। उर्दू, फारसी के शब्द भी जो प्रचलित हो गए थे इनकी भाषा में मिलते हैं। छंदों में इन्होंने कवित्त, सवैया तथा दोहे ही अधिक प्रयुक्त किए हैं। पद्माकर के काव्य में अलंकार का विशिष्ट स्थान है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, यमक आदि का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। अलंकारों के अतिरिक्त पद्माकर ने लोकोक्तियों, कहावतों एवं मुहावरों को भी बड़े सुन्दर ढंग से अपनी छंद-रचना में प्रयुक्त किया है। पद्माकर का भाषा-प्रवाह अत्युत्तम है। ऐसा भाषा का प्रवाह हिन्दी के कम कवियों में ही देखा जाता है। शब्दों के चयन में वे कमाल करते हैं। भावों की उत्कृष्टता भी इनमें कम नहीं है। जिस प्रकार भाषा सरल, गतियुक्त, सरस एवं मधुर है, भाव भी उसी प्रकार आनन्ददायी, सुन्दर और हृदयग्राही हैं। इनका प्रधान काव्य शृंगार रस पर ही है यद्यपि इन्होंने वीर रस पर भी काफी लिखा है। नारी-सौन्दर्य, अनुरोध, विरह, चन्द्र, आँसू, पश्चात्ताप, ऋतुवर्णन आदि इनके वर्ण्य विषय हैं। इनके प्रधान ग्रन्थ हैं—जगद्विनोद, पद्माभरण, हिम्मत बहादुर-विरदावली, हितोपदेश, रामरसायन, प्रबोधपचासा और गंगालहरी।

समीक्षकों की दृष्टि में

"पद्माकर की अत्यधिक लोकप्रियता के कारण मुक्तक काव्य की रचना के लिए एक पृथक् पद्माकरी शैली ही निकल गई है। वे अपनी प्रणाली के आचार्य और प्रतिनिधि कवि हैं।"

—श्री अखौरी गंगाप्रसाद सिंह

"इनकी मधुर कल्पना ऐसा स्वाभाविक और हावभावपूर्ण मूर्ति-विधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

वर्षा

भौंरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में,
मंजुल मल्हारनि कौ गावनो लगत है।
कहै 'पद्माकर' गुमान हूँ तैं, मानहू तैं,
प्रानहू तैं प्यारो मनभावनो लगत है।
मोरन कौ सोर घन घोर चहुँ ओरन,
हिंडोरन कौ वृन्द छबि छावनो लगत है।
नेह सरसावन में मेह बरसावन में,
सावन में झूलिबो सोहावनो लगत है॥
मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मन्द-मन्द मारुत मुहीम मनसा की है।
कहै 'पदमाकर' त्यों नदन नदीन नित,
नागर नवेली की त्यों नजर नसाकी है।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दँदै दीह,
दामिनी दमंकत दिसान में दिसा की है।
बद्दलन बुन्दन बिलोकि बगुलान बाग,
बँगलान बेलिन बहार बरषा की है॥

वसंत

औरै भाँति कुंजन में गुंजरत भौंर भीर,
औरै भाँति बौरन के भौंरन के ह्वै गए।
कहै 'पदमाकर' सु औरै भाँति गलियानि,
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गए।
औरै भाँति बिहँग समाज में अवाज होति,
अबै ऋतुराज के न आजु दिन द्वै गए।

औरै रस, औरै रीति, औरै राग, औरै रंग,
और तन, औरै मन, औरै बन ह्वै गए ॥

ए ब्रजचन्द चलो किन वा ब्रज लूकैं बसन्त की ऊकन लागीं;
त्यौं 'पदमाकर' पेखे पलासन पावक सी मनो फूंकन लागीं।
वे ब्रजवारी बिचारी बधू बनि बावरी लौं हिय हूकन लागीं;
काली कुरूप कसाइनैं ऐसी कुहू-कुहू क्वैलिया कूकन लागीं।

भक्ति

को किहि को सुत को किहि को पितु,
को किहि को पति कौन को को ती?
कौन को को जग ठाकुर चाकर,
को 'पदमाकर' कौन को गोती?
जानकी-जीवन जानि यहै, तजि,
देतो सबै धन धाम औ धोती।
हौं तो न लोटतो लोभ लपेट में,
पेट की जो पै चपेट न होती॥
ब्याधहु तैं बिहद असाधु हौं अजामिल तैं,
ग्राह तैं गुनाही कहौ किनमैं गिनाओगे;
स्यौरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यों,
न गौतम-तिया हौं जापै पग धरि आओगे।
राम सौं कहत 'पदमाकर' पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पारहू न पाओगे;
सीता सी सती को तज्यो झूठो ही कलंक सुनि,
साँचो हू कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे?
प्रलैके पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को,

भरि-भरि झांझरी बिलोकि मझधार परी,
धीर ना धरात 'पदमाकर' खेवैया को ।
कहाँ वार कहाँ पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात ना खेवैया और नैया को,
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहैं ऐसो,
अमिट भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को ॥

श्रीकृष्ण के प्रति

देखु 'पदमाकर' गोविन्द की अमित छवि,
संकर समेत विधि आनन्द सो बाढ़ो है;
झिझिकत झूमत मुदित मुसकात गहि
अंचल को छोर दोउ हाथन सो आढ़ो है;
पटकत पाँव होत पैंजनी झुनुक रंच,
नेक नेक नैनन तें नीर कन काढ़ो है,
आगे नंदरानी के तनिक पय पीबे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है ॥

पाप के प्रति

जैसो तू न मोको कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब हौं हूँ तोहि नेकहू न डरिहौं,
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जो परैगो तौ
उमंडि करि तोसों भुज-दंड ठोंकि लरिहौं,
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीचही ते,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्बहि कचरिहौं,
एरे दगादार मेरे पातक अपार
तोहि गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं ।

दानवीरता

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना,
कहै 'पदमाकर' सु हेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना,
गंज गजबकस महीप रजुनाथराव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना,
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तैं गरे तैं निज गोद तैं उतारै ना।

शिव-विवाह

हँसि हँसि भाजैं देखि दूलह दिगंबर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह में,
कहै 'पदमाकर' सु काहू सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह में।
मगन भयेऊ हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसै एऊ हँसि-हँसि के उमाह में,
सीस पर गंगा हँसैं, भुजनि भुजंगा हँसैं,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में।

'जगन्नाथदास रत्नाकर'

'रत्नाकर' जी का जन्म काशी में भाद्रपद शुक्ल ६ सं० १९२३ विक्रमी को हुआ था। संवत् १९४६ वि० से ही इन्होंने कविता करना प्रारम्भ कर दिया था था। इन्होंने ब्रजभाषा के प्रमुख कवियों की शैली का ही अनुकरण किया। ब्रजभाषा में इनका काव्य अपनी मौलिकता और सुन्दर अभिव्यंजना शैली के कारण श्रेष्ठ स्थान रखता है। इनकी विचित्र-उक्ति और चमत्कारपूर्ण काव्य-गत सूझ बड़ी गहरी थी। ये जीवन के अधिक दिनों तक अयोध्या रहे। इनका देहावसान आषाढ़ कृष्णा ३, सं० ११९८९ वि० को हरिद्वार में हुआ।

. रत्नाकर जी ने हरिश्चन्द्र, गंगावतरण, उद्धवशतक नामक तीन प्रबन्ध काव्य रचे। इनकी काव्य-भाषा 'ब्रजभाषा' थी। इनकी काव्य-कला की मुख्य विशेषता चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता और रसों की सुन्दर व्यंजना है। इनकी कल्पना विशद और प्रेम-संदेश से भरी हुई और कभी-कभी मूक व्यंजना उद्धवशतक रचना में देखने योग्य है। शृंगार की अनुभूति और हाव-भावों को जिन सशक्त शब्द-चित्रों द्वारा उन्होंने व्यक्त किया वे हृदय-पलट पर सदा के लिए खिंच जाते हैं। भक्ति-भावना का यह स्वरूप इन्होंने स्थापित किया है जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय में धारण कर सकता है। 'उद्धव-शतक' इस धारा में अपना श्रेष्ठ स्थान रखता है। इनके रूपक, अनुप्रास, यमक के उदाहरण बड़े ही अनूठे हैं। यद्यपि जिन दिनों रत्नाकर जी ने अपनी लेखनी उठाई वे दिन ब्रजभाषा के ह्रास के थे किन्तु रत्नाकर जी के कलापूर्ण हाथों मे पड़कर वह फिर निखर आई और उनको तथा उनके पश्चात् के कवियों को पुनः ब्रजभाषा का लोभ जगा। उसमें नवीन आकर्षण तथा जीवन प्रतीत होने

लगा। इन्होंने नवीन मुहाविरों के सुन्दर प्रयोग से ब्रजभाषा में पुनः प्रवाह उत्पन्न कर दिया। रत्नाकर जी की अलङ्कार-योजना और शब्द-विधान विशेष काव्योपयोगी हुए हैं। इन्होंने लम्बे समासों का भी समुचित प्रयोग किया है। इनके रचे ग्रन्थ 'उद्धव-शतक' और 'गंगावतरण' विशेष उत्कृष्ट हैं और हिन्दी काव्य में सदा विशेष सम्मानित रहेंगे।

समालोचक

"उद्धवशतक" की मार्मिकता और रचनाकौशल अद्वितीय है। इनकी जैसी सूझ और उक्ति-वैचित्र्य पुराने कवियों में भी कम देखी जाती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"निर्गुण और सगुण उपासना को लेकर सूर के बाद यदि किसी को भी 'भ्रमरगीत' की पद्धति पर रचना करने में आश्चर्यजनक सफलता मिली है तो रत्नाकर जी को। 'उद्धव-शतक' उनकी प्रतिभा और शक्ति का प्रमाण है।"

—पं० कृष्णशङ्कर शुक्ल

उद्धव-गोपी-संवाद

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैनिन के गुन-गन गावती॥
जमुना कछारनि की रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रजवासिनि दिवैया सुखरासिन की,
ऊधौ नित हमको बुलावन कौ आवती॥१॥
सील सनी सुरुचि दु-बात चलैं पूरब की,
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुरानै तैं।
कहै 'रतनाकर' अचानक चमक उठी,
उर घनस्याम के अधीर अकुलाने तैं॥
आसा दंत दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माँहिं
ब्रज में सुदिन बारि-बृन्द हरियाने तैं।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैनन कै तीर बह्यो,
धीर बह्यो ऊधो-उर अचल रसाने तैं॥२॥
प्रेम नेम निफल निवारि उर अन्तर तैं,
ब्रह्मज्ञान आँनदनिधान भरि लैहैं हम,
कहै 'रतनाकर' सुधारकरमुखीनि ध्यान,
आँसुनि सों धोइ जोति जोइ जोरि लैहैं हम,
आवो एक बार धारि गोकुल गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीति करि लैहैं हम,
मन सौं, करेजो सौं स्रवन-सिर आँखिनि सौं,
ऊधव, तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम॥३॥

लै के उपदेश औ संदेशपन ऊधौ चले,
सुजस कमाइबैं उछाह उदगार मैं।
कहैं 'रतनाकर' निहारे कान्ह कातर पै,
आतुर भये यों रह्यो मन न सँभार मैं।
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब,
हरैं-हरैं पूजि सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु,
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं ॥४॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्मदूत है पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।
कहै 'रतनाकर' पै प्रीति रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यौ हम, कान्ह-ब्रह्म एक ही कह्यौ जौ तुम,
तौ हूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ॥५॥

चिंतामनि मंजुल पँवारि धूरि धारनि मैं,
काँच मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।
कहै 'रतनाकर' बियोग आगि सारन कौ,
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ।
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके,
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ॥
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैये जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥६॥

कर बिनु कैसे गाय दुहिहै हमारी वह,
पद बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहै।

कहै 'रतनाकर' बदन बिनु कैसे खाय
माखन, बजाइ बेनु, गोधन चराइहै ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिना ही हाय,
भोरे ब्रजबासिन की बिपति बराइहै।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधो कहौ कौन धौं हमारे काम आइहै ॥७॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग
लखियत गोपिन के अंग पियराने में।
बौरे वृन्द लसत रसाल बर बारिनि के,
पिक की पुकार है चबाव उमगाने में।
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ,
बैहरि बतास है उसास अधिकाने में।
काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेख कहा,
ऊधो नित बसत बसंत बरसाने में ॥८॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै 'रत्नाकर' यों आवत चकात ऊधो,
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बँहोलिनि जो आँस अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥९॥

लै कै पन सूछम अमोल जो पठायो आप,
ताको मोल तनक तुल्यो न तहाँ साँठी तैं।
कहै 'रतनाकर' पुकारे ठौर-ठौर पर,
गौरि बृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैं ॥

लीजै हेरि आपुहिं न हेरि हम पायो फेरि,
याही फेर मांहि भए माठी दधि आँठी तैं ॥
ल्याए धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ,
ज्ञान गयो सहित गुमान गिरि गाँठी तैं ॥१०॥

ग्रीष्म

कैधौं अति दुसह दवागि की दपेट कैधौं,
बाड़व की बिषम झपेट-झर झार है।
कहै 'रतनाकर' दहकि दाह दारुन सौं,
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है॥
रुद्र दृग तीसरे की कैधौं बिकराल ज्वाल,
फेंकत फुलिंग कै फनिंद फुफकार है।
कैधौं ऋतुराज काज अवनि उसास लेति,
कैधौं यह ग्रीषम की भीषम लुवार है॥

वर्षा

रहित सदाई हरियाई हिय-धामनि मैं,
ऊरध उदास सो झकोर पुरवा की है।
पीव पीव गोपी पीरपूरित पुकारति हैं,
सोई 'रतनाकर' पुकार पपिहा की हैं।
लागि रहै नैननि सों नीर की झरी औ उठै
चित्त मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम धाम ब्रजमंडल मैं,
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है॥

शरद्

बिकसन लागे कल-कुमुद-कलाप मंजु,
मधुर अलाप अलि अवलि उचारै है।

कहै 'रतनाकर' दिगंगना-समाज स्वच्छ
कास मिस हास के बिलासनि पसारै है।
क्वार चाँदनी मैं रौन रेती की बहार हेरि,
याही निरधार ही हुलास भरि धारै है।
जीति दल बादल के परब पुनीत पाय,
कूल कालिंदी के चंद रजत बगारै है।

४—आधुनिक सन्धिकालीन कवि

प्रमुख कवि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त।

विशेषताएँ

(१) प्रायः सभी के काव्य में समाज-सुधार और राष्ट्रीयता की भावना का उभार मिलता है।

(२) प्रायः सभी भारत के अतीत गौरव के इतिहास से प्रभावित और प्रेरित रहे हैं।

(३) सभी ने समाज-उत्कर्ष-संबंधी कथानकों को वर्ण्य विषय बनाया, जिसमें वीर, ओज, साहस, धैर्य, दृढ़ता आदि गुणों का समावेश हमें पद-पद पर मिलता है।

(४) समाज में प्रचलित और व्यापक खड़ी बोली का आश्रय सभी ने लिया। इस भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के प्रयास में इस युग के कवियों का विशेष हाथ है।

(५) परम्परागत प्रायः सभी छन्दों, अलंकारों का उपयुक्त प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ।

(६) प्रायः सभी ने अपनी काव्य-शैलियाँ निर्धारित कीं और उन्हें आगे बढ़ाया।

प्रमुख ग्रन्थ

चंद्रावली, सत्य हरिश्चन्द्र नाटक; प्रियप्रवास; भारतभारती, जयद्रथ-वध, साकेत आदि।

'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र

जीवन-परिचय

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म भादों सुदी ५ सं० १९०७ विक्रमी को काशी में हुआ था। इनके पूर्वज सेठ अमीचन्द एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। भारतेन्दु के पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास था। इनकी माता का देहान्त सं० १९१२ में तथा पिता का देहान्त सं० १९१७ विक्रमी में हो गया। इनके हिन्दी, फारसी और अंग्रेजी के प्रथम शिक्षक क्रमशः पं० ईश्वरदत्त तिवारी, मौलवी ताज अली और बाबू नन्दकिशोर थे। इनके काव्य-गुरु पं लोकनाथ थे। इन्होंने मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी आदि अनेक भाषाएँ स्वयं सीख ली थीं। १४ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बाबू गुलाबराय की कन्या मन्नीदेवी से हुआ। इनके दो पुत्र, एक कन्या उत्पन्न हुई थी। किन्तु पुत्र शैशवावस्था में ही परलोक सिधारे और कन्या विद्यावती के पाँच पुत्र विद्यमान हैं। इन्होंने बचपन से ही भारत के विभिन्न भागों—हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता, पटना, हरिहरक्षेत्र, मेवाड़, पुष्कर आदि—का पर्यटन किया था और इस भ्रमण में कितने ही प्रकार के अनुभव किये थे। संवत् १९४० वि० में ये क्षयरोग से आक्रान्त हुए और ३५ वर्ष की आयु में माघ कृष्ण ६ संवत् १९४१ विक्रमी को इनका देहावसान हो गया।

भारतेन्दु एक धनी परिवार में उत्पन्न हुए थे और हृदय के उदार थे। हिन्दी तथा हिन्द देश के कल्याणार्थ इन्होंने घर के पैसे-पैसे को पानी की तरह बहाया। एक बार महाराज काशीनरेश ने इनसे कहा, "बबुआ, घर को देख कर काम करो।" तो उन्होंने उत्तर दिया, 'हुजूर, यह धन मेरे बहुत से बुजुर्गों को खा गया है। अब मैं इसको खा

डालूँगा।" इन्होंने सं० १९२३ में चौखम्भा स्कूल स्थापित किया। सं० १९२५ वि० में 'कविवचन सुधा' नाम की मासिक पत्रिका निकाली। सं० १९३० वि० में 'हरिश्चंद्र मैगेजीन' निकाली। सं० १९३० वि० में ही स्त्रियों के उपकारार्थ 'बालबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली। सं० १९२७ में कविता-वर्द्धिनी सभा स्थापित की। सं० १९३० वि० में 'तदीय समाज' स्थापित किया। जीवन भर हिन्दी की सेवा में लगे रहे। कविजनों की गोष्ठियाँ इनका दैनिक कार्य हो गया था। इसका स्वभाव बड़ा ही सरल और सौम्य था। ये बड़े ही प्रेमी और रसिक थे। हास्य रस तो जीवन में मानों भरपूर था। संगीत, कला, साहित्य आदि में बड़ा चाव था और सबसे अधिक गुण उनमें था मस्ती का। सम्वत् १९३७ विक्रमी में पं० रामाशंकर व्यास ने 'सारसुधा-निधि' नामक पत्र में इन्हें भारतेन्दु की पदवी से विभूषित किया था। इस सम्मान को तत्कालीन सभी विद्वानों ने स्वीकार किया और सभी ने इन्हें 'भारतेन्दु' कहना प्रारम्भ कर दिया। तब से इनकी 'भारतेन्दु' की उपाधि चली आ रही है और चलती रहेगी।

ऐसा कहा जाता है कि भारतेन्दु ने पाँच वर्ष की अवस्था में निम्नांकित दोहा बनाया था—

"लै ब्यौंड़ा ठाढ़े भए, श्री अनिरुद्ध सुजान। बानासुर की सैन को हनन लगे भगवान॥"

इन्होंने १६, १७ वर्ष की अवस्था में काव्य-रचना प्रारम्भ कर दी थी। १७ वर्ष के अल्प कविता-काल में इन्होंने १७५ ग्रन्थ बनाए। आधुनिक हिन्दी गद्य के ये जन्मदाता कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त जहाँ तक पद्य-काव्य का सम्बन्ध है इन्होंने ब्रजभाषा को अपनाया था। इनकी मौलिक और अनूदित रचनाओं में इनकी पद्य-रचना की प्रतिभा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। चन्द्रावली नाटिका में इनके प्रेम भरे छन्द कितने सुन्दर हैं यह पाठक का मन ही जानता है, कहना असंभव है। प्रेममाधुरी, कर्पूर-मंजरी, भरतदुर्दशा, नीलदेवी तथा सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में इनकी अति सुन्दर रचनाएँ मिलती हैं। शृंगाररस के कवित्त और सवैये तो इतने

मनोमुग्धकारी हैं कि पढ़ते-पढ़ते मन ही नहीं थकता है। इन्होंने हिन्दी को सर्वांङ्गीण रूप से सजाने का प्रयत्न किया था। नाटक (मौलिक और अनूदित) गद्यकाव्य, इतिहास, हास्य रस के चुटकुले, पत्र-पत्रिकाएँ, पद्य काव्य में कवित्त, सवैए, दोहे तथा अन्य छन्दों की रचना इन्होंने करके हिन्दी-साहित्य को चतुर्दिक् विकसित किया। इतने अल्पकाल में १७५ ग्रन्थ लिखना खेल न था।

भारतेन्दु की भाषा अति सरल, सुबोध तथा संगठित होती थी। भावों की मार्मिकता विशेष ध्यान देने योग्य है। इन्होंने दो शैलियों को अपनाया है। कवि और रसिक होने के नाते जहाँ इन्होंने भावावेश की शैली में रचना की है वहाँ वाक्य छोटे-छोटे, सरल बोलचाल के शब्द और मार्मिकता तथा वेदना भरी उक्तियाँ मिलेंगी। इन्होंने जहाँ तथ्य-निरूपण किया है वहाँ भाषा में संस्कृत के शब्द कुछ मिलते हैं। इनकी निम्नांकित विशेषताएँ थीं—

(१) इनका सबसे अधिक प्रभावशाली प्रेम का वर्णन है जिसकी विशेषता 'चन्द्रावली नाटिका' में स्पष्ट देखी जा सकती है।

(२) ये अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे, अतएव इनके युग की कोई घटना ऐसी न थी जिस पर इनकी लेखनी न चली हो—दरबार, युवराज-आगमन, युद्ध, मंदिर, धर्म, स्त्रीशिक्षा, समाज-सुधार, भारत दुर्दशा, राष्ट्रीयता आदि का कोई प्रसंग इनसे छूट न पाया था।

(३) इनका हिन्दी-प्रेम और स्वदेश-प्रेम अथाह था। उसके लिए अपना जीवन और धन सब न्योछावर कर दिया।

(४) इनकी रचनाओं में हास्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'नीलदेवी' तथा 'अन्धेरनगरी' में इसके कितने ही प्रमाण मिलेंगे।

(५) इसकी रचना में भाषा की शक्ति, भावों की उत्कृष्टता और अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हमें मिलता है।

(६) इन्होंने पद्य में ब्रजभाषा और गद्य में खड़ी बोली का रूप अपनाया था और उसे सफलतापूर्वक निभाया था।

(७) इनमें काव्योपयुक्त सर्वाङ्गीण प्रतिभा और शक्ति इतनी अधिक थी कि इन्होंने हिन्दी की आधुनिक धारा ही प्रवाहित कर दी और कितने ही लेखकों तथा कवियों को जन्म दिया, जिन्होंने इनसे प्रेरणा प्राप्त की।

समीक्षकों की दृष्टि में

"हिन्दी-साहित्य को जिन-जिन बातों की आवश्यकता थी प्रायः उन सभी विषयों पर इन्होंने साहित्य रचना की है। ऐसा उन्नतिशील और प्रतिनिधि कवि भाषा साहित्य में कोई दूसरा नहीं हुआ॥"

—मिश्रबन्धु

"भारतेन्दु जी एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मन्दिर के अधिकारियों, टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाए जाते हैं। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की काव्य-कला का विशेष माधुर्य हैं।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

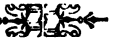

चन्द्रावली नाटिका से

मनमोहन तें बिछुरीं जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवती हैं।
हरिचन्द जू प्रेम के फंद परी,
कुल की कुल लाजहिं खोवती हैं।
दुख के दिन को कोऊ भाँति बितै,
बिरहागम रैन सँजोवती है।
हमहीं अपुनी दसा जानैं सखी,
निसि सोवती हैं कि धौं रोवती हैं॥ १॥
जग जानत कौन है प्रेम-बिथा,
केहिसों चरचा या वियोग की कीजिए।
मुनि को कहा मानै कहा समुझै,
कोउ क्यों बिन बात की रारहिं लीजिये।
नित जो हरिचन्दजू बीतै सहै,
बकि कै जग क्यों परतीतिहि छीजिये।
सब पूछत मौन क्यों बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हें उत्तर दीजिए॥ २॥
पहले मुसुकाइ लजाय कछू,
क्यों चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाय कै प्रीति,
निबाहन को क्यों कलाम कियो।
'हरिचंद' भये निरमोही इते,
निज नेह को यों परिनाम कियो।
मन माँहि जो तोरन ही की हती,
अपनाइ के क्यों बदनाम कियो॥३॥

कित को टरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
'हरिचंद' भये हो कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यो,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइ कै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ॥ ४॥

इन दुखियान कों न सुख सपनेहूँ मिल्यौ,
यों ही सदा व्याकुल बिकल अकुलायँगी॥
प्यारे 'हरिचंद' जू की बीती जानि औधि जौंपै,
जैहैं प्रान तऊ येतो साथ न समायँगी॥
देख्यौ एक बारहू न नैन भरि ताहि याते,
जौन-जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रानप्यारे भये दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥ ५॥

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिये कहि पेखिए का।
सुख छाँड़ि के संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेलिए का॥
हरिचन्द्र जू हीरन को बेवहार कै
काँचन कौ लै परेखिए का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सों अब देखिए का॥ ७॥

देखि घनस्याम घनस्याम की सुरति करी,
जिय में बिरह घटा घहरि घहरि उठै।

त्यौं ही इन्द्र-धनु बगमाल देखि बनमाल
मोती लर पी की जिय लहरि-लहरि उठै ॥
'हरिचंद' मोर, पिक धुनि, सुनि बंसीनाद,
बाँकी छबि बार-बार छहरि-छहरि उठै ।
देखि-देखि दामिनि की दुगुन दमक पीत-
पट छोर मोरे हिय फहरि-फहरि उठै ॥ ८ ॥

प्रेम-माधुरी

कूकै लगीं कोइलैं कदम्बन पै बैठि फेरि,
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
बोलै लगे दादुर, मयूर लगे नाचै फेरि
देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे ।
हरी भई भूमि, सीरी पवन चलन लागी,
लखि 'हरिचन्द' फेर प्रान तरसै लगे ।
फेरि झूमि-झूमि बरषा की ऋतु आई फे र
बादर निगोरे झुकि-झुकि बरसै लगे ॥

पहिले ही जाय मिले गुन में स्रवन फेरि,
रूप-सुधा मधि कीनो नैन हूँ पयान है ।
हँसनि नटनि चितवनि मुसुकानि सुघराई
रसिकाई मिलि मति पय पान है ॥
मोहि-मोहि मोहन-मई री मन मेरो भयो
'हरीचंद' भेद ना परत कछु जान है ।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हिय में न जानी परै कान्ह है कि प्रान है ॥
पीरो तन परयो फूली सरसों सरस सोई
मन मुरझानो पतझार मनौ लाई है ।

सीरी स्वाँस त्रिविध समीर सी बहति सदा
अँखिया बरसि मधु झरि सी लगाई है।
'हरीचंद' फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है॥
घेरि घेरि घन आए छाय रहे चहूँ ओर
कौन हेत प्राननाथ सुरति बिसारी है।
दामिनि दमक जैसी जुगनूँ चमक तैसी
नभ मैं बिसाल बग पंगति सँवारी है।
ऐसे समय "हरिचन्द" धीर न धरत नेकु
बिरह बिथा तें होति व्याकुल पियारी है।
प्रीतम पियारे नंदलाल बिनु हाय यह
सावन की राति किधौं द्रोपदी की सारी है॥

कर्पूर मंजरी

फूलैंगे पलास बन आगि-सी लगाय कूर,
कोकिल कुहुकि कूर-सबद सुनावैगो;
त्यौंही सखी लोक सबै गावेगो धमारि, धीर-
हरन अबीर बीर सबही उड़ावैगो।
सावधान होहु री बियोगिनी सँभारि तन
अतन तनक ही मैं तापन ते तावैगो,
धीरज नसावत, बढ़ावत बिरह, काम
कहर मचावत बसंत अब आवैगो॥

यमुना की शोभा

तरनितनूजा तट तमाल-तरुवर बहु छाए;
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहु सुहाए।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा,
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।
मनु आतप-बारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत,
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन, मन सुख लहत।।

परत चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ, जल मधि चमकायो;
लोल लहरि लहि नचत कबहुँ सोई मनभायो।
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसंत सुहायो;
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो।
कै रास रमन मैं हरिमुकुट-आभा जल दिखरात है;
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है।

कबहुँ होत सतचंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत;
पवन-गवन बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलैं;
कै तरंग की डोर हिंडोलन करत कलोलैं।
कै बाल-गुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती;
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज-रमनी जल आवती।

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल,
कै तारागन गगन लुकत प्रगटत ससि अबिकल।
कै कालिंदी नीर-तरंग जिते उपजावत;
तितने ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत।

कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार जल उच्छरत,
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत।
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत,
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत,
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पंछी करत,
जलपान स्नान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जीवन-परिचय

हरिऔधजी का जन्म संवत् १९२२ वि० में आजमगढ़ के निजामाबाद ग्राम में हुआ था। बचपन में इनका साथ बाबा-सुमेरसिंह से रहा, जो एक सिक्ख धर्मोपदेशक थे और इसी ग्राम में रहा करते थे। इन्हीं की प्रेरणा से अयोध्या सिंहजी में काव्य-प्रेम का अंकुर जमा। बाबा द्वारा आयोजित कविगोष्ठियों में 'हरिऔध' जी ने कविताओं की समस्यापूर्ति का अभ्यास किया था। ये ब्रज भाषा के प्रेमी थे उसी में कविता भी करते थे। पहिले आप अध्यापक रहे, फिर कानूनगो। उससे अवकाश प्राप्त करके महामना मालवीयजी के प्रबल अनुरोध करने पर आपने हिन्दू-विश्व-विद्यालय में हिन्दी के अध्यापक-पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया। आपका हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी का अध्ययन बहुत अच्छा था। अपने सतत अध्नयन और प्रतिभाशाली कवि-हृदय के कारण 'हरिऔध' जी ने हिन्दी-जगत् में पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। पहिले आप सरलतम हिन्दी में कविताएँ रचते थे, पश्चात् नितान्त संस्कृत-गर्भित भाषा की भी करामात इन्होंने दिखाई और उसके पश्चात् मुहावरेवाली सरस और चुभती हुई भाषा का भी सुन्दर परिचय दिया। इससे आप की कवित्वशक्ति और प्रतिभा व्यक्त होती है। आपके रचे हुए प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

पद्य—प्रियप्रवास, पद्यप्रमोद, वैदेही-वनवास, पारिजात (संस्कृत गर्भित), बोलचाल, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे (सरल बोलचाल की भाषा में) आदि।

'रस कलस' और फुटकर रचनाएँ (ब्रजभाषा में)।

गद्य—ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल, बेनिस का बाँका, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास। इन्हें 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही वनवास' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक और हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा पुरस्कार क्रमशः सं० २९९५ वि० और सं० २००१ वि० में मिला।

काव्यगत विशेषताएँ

(१) हरिऔध जी ने खड़ी बोली में संस्कृत छन्दों तथा संस्कृत-प्रधान शब्दों की समास पदावली में ऐसी प्रसिद्ध रचना की जिसकी प्रौढ़ता और विशिष्टता निर्विवाद है। 'प्रियप्रवास' की वस्तु और शैली का हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान।

(२) जहाँ इन्होंने कठिन संस्कृत शब्दावली के प्रयोग में कुशलता दिखाई, वहीं इन्होंने सरलतम बोलचाल तथा मुहावरों से युक्त काव्य-रचना भी की। 'बोलचाल', 'चुभते चौपदे', चोखे चौपदे' इसके उज्ज्वल उदाहरण हैं।

(३) 'प्रियप्रवास' ग्रन्थ में जिस लोक-नेता का चरित्र-विकास आपने किया वह लोक-संग्रह का भाव हिन्दी-जगत् में अनूठा ही निकला।

(४) भाषा में कोमल कान्त पदावली और मुहावरेदारी सम्बन्धी 'हरिऔध' की देन सदा मानी जाती रहेगी।

(५) प्रिय-प्रवास का प्रकृति-चित्रण अपनी निजी विशेषता रखता है।

समीक्षकों की दृष्टि में

"भाषा के सरल और कठिन शब्द-भण्डारों पर इनका विस्तृत अधिकार प्रकट होता है। यही द्विकलात्मक कला उपाध्याय जी की विशेषता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"प्रियप्रवास की विशेषता भावसौन्दर्य और चरित्रचित्रण में है। वास्तव में उपाध्याय जी हमारी कविता के आचार्य हैं।"

—डाक्टर रामकुमार वर्मा

"कृष्ण के चले जाने पर ब्रज की दशा का दिग्दर्शन जैसे स्थल 'प्रियप्रवास' में बड़े ही मार्मिक हैं। उस करुण प्रसंग की विरहवाणी पाठकों के हृदय को अपनी वेदना से आर्द्र कर देती है। यमुना के प्रवाह की तरह ही मानों करुणा की एक कोमल धार बड़ी दूर तक सुख-दुःख को स्मृतियाँ लिए हुए बह चली हो।"

—शान्तिप्रिय द्विवेदी

ब्रज का एक प्रभात

तारे डूबे, तम टल गया, लालिमा व्योम छायी।
पंछी बोले, तमचुर जगे, ज्योति फैली दिशा में ॥
शाखा डोली सकल तरु की, वारि अंभोज फूले।
धीरे-धीरे दिनकर कढ़े, तामसी रात बीती ॥१॥

लोनी-लोनी सकल लतिका वायु में मंद डोलीं।
प्यारी-प्यारी ललित लहरें भानुजा अंक सोहीं ॥
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी ओर छूटीं।
कूलों, कुंजों, कुसुमित वनों, क्यारियों ज्योति फैली ॥२॥

प्रातः शोभा अवनि ब्रज में, आज प्यारी नहीं थी।
मीठा मीठा विहँग-रव भी कान को था न भाता ॥
फूले-फूले कमल दव थे लोचनों में लगाते।
लाली सारे गगन-तल की काल-व्याली समा थी ॥३॥

चिन्ता की-सी कुटिल उठती, अंक जो थीं तरंगें।
वे थीं मानों प्रकट करती, भानुजा की व्यथायें ॥
धीरे-धीरे पवन मृदु में चाव से थीं न डोली।
शाखायें भी सहित लतिका शोक से कंपिता थीं ॥४॥

फूलों-पत्तों सकल पर हैं, वारि बूँदें लखाती।
रोते हैं या विटप सब यों आँसुओं को दिखाके?
रोई थी जो रजनि दुख से नंद की कामिनी के।
ये बूँदें हैं निपतित हुईं या उसी के दृगों से ॥५॥

धीरे-धीरे पवन ढिग जा फूल वाले द्रुमों के।
शाखाओं से कुसुम-चय को, मेदिनी थी गिराती ॥
मानों यों थी हरण करती, फुल्लता पादपों की।
जो थीं प्यारी न ब्रज जन को, आज न्यारी व्यथा से ॥६॥

फूलों का यों अवनितल में देख के पात होना।
ऐसी भी थी हृदयतल में कल्पना आज होती ॥
फूले-फूले कुसुम अपने अंक में से गिराके।
बारी-बारी सकल तरु भी खिन्नता हैं दिखाते ॥७॥
नीची ऊँची सरित सर-वीचियाँ, ओस बूँदें।
आभा न्यारी वहन करती, भानु ले अंक में थीं ॥
मानों यों वे हृदय तल के, ताप को थीं दिखाती।
या दावा थी उरसि उनके दीप्तिमाना दुखों की ॥८॥
सारा नीला-सलिल-यमुना, शोक-छाया पगा था।
कंजो में से मधुप कढ़के, घूमते थे भ्रमे-से ॥
मानो खोटी-विरह-घटिका सामने देखके ही।
कोई भी थी अवनत-मुखी, कांतिहीना मलीना ॥९॥

(प्रियप्रवास से)

चौपदे

धन विभव की बात क्या जिनके बड़े,
रज बराबर थे समझते राज को।
है तरस आता उन्हीं के लाड़ले,
हैं तरसते एक मुट्ठी नाज को।
क्या दिनों का फेर हम इसको कहें?
या कि है दिखला रही रङ्गत बिपत?
थी कभी हमसे नहीं जिनकी चली,
आज दिन वे ही चलाते हैं चपत।
जो सुखों की गोदियों के लाल थे,
आज दिन वे हैं दुखों से घिर रहे।
जो रहे अकड़े जगत के सामने,
आज वे हैं पेट पकड़े फिर रहे।

दूध पीने को उन्हें मिलता नहीं,
जो सहित परिवार पीते घी रहे।
अब किसी का पेट भर पाता नहीं,
लोग आधा पेट खा हैं जी रहे।

पेट भर अब अन्न मिलता है कहाँ?
हैं कहाँ अब डालियाँ फल से लदी?
बह रहा है सोत दुख का अब वहाँ?
थी जहाँ घी दूध की बहती नदी।

छिन गया आज कौर मुँह का है,
गाय देती न दूध है दूहे।
है बुरा हाल भूख से मेरा,
पेट में कूद हैं रहे चूहे।

आज वे हैं जान के गाहक बने,
मुँह हमारा देख जो जीते रहे।
हाथ धो वे आज पीछे हैं पड़े,
जो हमारा पाँव धो पीते रहे।

गालियाँ हैं आज उनको मिल रही,
गीत जिनका देवते थे गा रहे।
पाँव जिनके प्रेम से पुजते रहे,
पाँव की वे ठोकरें हैं खा रहे।

आज वे पाले दुखों के हैं पड़े,
जो सदा सुख-पालने में ही पले।
सेज पर जो फूल की थे लेटते,
वे रहे हैं लेट तलवों के तले।

मैथिलीशरण गुप्त

जीवन-परिचय

आपका जन्म सं० १९४३ विक्रमी में झाँसी जिले के अन्तर्गत चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम लाला रामचरण गुप्त था जो स्वयं कवि थे। मैथिलीशरण गुप्त के जीवन पर उनके पिता का गम्भीर प्रभाव था जैसा कि उन्होंने साकेत के समर्पण में लिखा है:—

"शैशव में तुमसे सुने याद रहे ये छन्द।
'हम चाकर रघुबीर के, पटौ लिखौ दरबार।
अब तुलसी का होहिंगे, नर के मनसबदार॥'
'तुम दयालु थे दे गए कविता का वरदान'!"

इन्होंने अपना काव्य-गुरु पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी को माना है—"आचार्य द्विवेदी जी महाराज यदि मुझे न अपनाते तो मैं आज इस प्रकार आप लोगों के समक्ष खड़े होने में समर्थ होता या नहीं, कौन कह सकता है?"

गुप्त जी पर पद-पद पर युग का प्रभाव पड़ता रहा है, जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी विभिन्न रचनाओं द्वारा की है। 'भारत भारती' इनकी पहिली ऐसी रचना थी जिसने देश में जनप्रियता पाई और गुप्त जी को देश-भक्तों में लाकर खड़ा कर दिया। शनैः शनैः राष्ट्रीयता का प्रभाव इन पर पड़ता गया और इन्होंने सहृदय कवि का परिचय वास्तविकता की सीमा में भी दिया। देश के स्वातन्त्र्य-युद्ध में हम इन्हें सक्रिय सैनिक के रूप में पाते हैं। फलस्वरूप कारावास का जीवन भी इन्होंने बिताया। जनता और

देश की सभी भावनाओं की इन्होंने स्वयं प्रतीति की है, इसीलिए ये युग के प्रतिनिधि कवि हो सकने में समर्थ हुए हैं।

गुप्तजी के प्रमुख ग्रन्थ

(१) भारत भारती	(२) जयद्रथ-वध
(३) हिन्दू	(४) गुरुकुल
(५) झंकार	(६) मेघनादवध
(७) विरहिणी ब्रजांगना	(८) साकेत
(९) द्वापर	(१०) पंचवटी
(११) शक्ति	(१२) रंग में भंग
(१३) पत्रावली	(१४) वैतालिक
(१५) तिलोत्तमा	(१६) शकुन्तला
(१७) स्वदेश-संगीत	(१८) चन्द्रहास
(१९) कर्बला	(२०) प्लासी का युद्ध
(२१) यशोधरा	(२२) सिद्धराज
(२३) किसान	(२४) जयभारत

(१) गुप्त जी यद्यपि विशेष रूप से राम के उपासक हैं और इनकी विशिष्ट रचनाएँ 'राम' की प्रेरणा से ही अस्तित्व में आईं, तथापि ये कृष्ण-भक्ति और बुद्ध-चरित्र के प्रभाव से भी प्रभावित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन पर युग का प्रभाव भी अधिक है। 'राम' की प्रेरणा में साकेत और पंचवटी, बुद्ध की प्रेरणा में यशोधरा, कृष्ण-भक्ति की प्रेरणा में विरहिणी ब्रजांगना, द्वापर तथा युग के प्रभाव में भारत भारती, हिन्दू, गुरुकुल, किसान, झंकार, स्वदेश संगीत, अनघ आदि प्रमुख हैं।

(२) गुप्त जी ने प्रबन्ध काव्यों की परम्परा को भी यथासम्भव ठीक से निबाहा है। इन्होंने अनेक प्रबन्ध काव्य लिखे हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं—रंग में भंग, जयद्रथ वध, विकट भट, प्लासी का युद्ध,

गुरुकुल, किसान, पंचवटी, सिद्धराज, यशोधरा, साकेत, जयभारत। 'साकेत' नामक प्रबन्ध काव्य हिन्दी जगत की निधि है।

(३) गुप्तजी युग-प्रतिनिधि कवि हैं। अपने युग के प्रभाव से उन्होंने राष्ट्रीय भावनाओं की भी अभिव्यक्ति बड़े ही उत्तम ढंग से की है। प्रायः इनकी सभी रचनाएँ अहिंसा, सत्याग्रह, मानववाद, राष्ट्रीयता, श्रमजीवियों के प्रति प्रेम से किसी न किसी प्रकार प्रभावित हैं।

(४) गुप्तजी में सामंजस्य एक विशेष गुण हैं। इन्होंने वर्ण्य विषय, प्रेरणा, काव्यशैली, अलंकार, पिंगल तथा भाषा में अपने इस युग का पर्याप्त परिचय दिया है। प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर संगम इनके काव्य का एक विशेष गुण है।

(५) इनकी भाषा सरल, सुबोध और माधुर्य गुणयुक्त, शैली मनोरंजक और प्रभाव शाली, शुद्ध खड़ी बोली का स्वरूप, वाक्य-विन्यास, पद-लालित्य, रस, अलंकार और पिंगल काव्योपयुक्त तथा वस्तु-विषय सरल और परम्परागत हैं। इन्हीं के कारण ये जनता में अत्यधिक प्रिय हैं।

(६) इनकी कविता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इन्होंने धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय और प्रगतिशील साहित्यिक रचनाएँ की हैं। झंकार में छायावाद का स्पष्ट प्रभाव है। इनके गीत भावोत्कृष्टता की दृष्टि से बड़े ही उत्तम हैं। संवत् १९९३ में 'साकेत' ग्रन्थ पर इन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' पुरस्कार भी मिल चुका है। ये हिन्दी के प्रतिनिधि कवि माने जाते है।

(७) गुप्त जी के काव्यों में भारतीय संस्कृति की सुन्दर झलक मिलती है।

समालोचक की दृष्टि में

"गुप्तजी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करनेवाले अथवा मद में झूमने वाले कवि नहीं। उनकी

प्रतिभा की एक बड़ी विशेषता है—कालानुसरण की क्षमता, अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्यप्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। प्राचीन के प्रति पूज्य भाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इनमें हैं। इस दृष्टि से हिन्दी-भाषी जनता के प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"मैथिलीशरण गुप्त की प्रतिभा हिन्दी में अद्वितीय है। वे अब भी उतने ही नवीन है जितने तीस वर्ष पहले थे।

—डा० रामकुमार वर्मा

"पुराने गौरव के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान् और नवीन ज्ञान के प्रति आस्थायुक्त युग के साहित्य का रहस्य मैथिलीशरण गुप्त ने खोला है। आज का भारत उनका है।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

सीता वन में

मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

सम्राट स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहाँ, यद्यपि असंख्य आकर हैं,
पानी पीते मृग-सिंह एक तट पर हैं।
सीता रानी को यहाँ लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

क्या सुन्दर लता वितान तना है मेरा,
पुञ्जाकृति गुंजित कुंज घना है मेरा।
जल निर्मल, पवन पराग-सना है मेरा,
गढ़ चित्रकूट दृढ़ दिव्य बना है मेरा।
प्रहरी निर्झर, परिखा प्रवाह की काया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रम-वारि-बिन्दु-फल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

जिनसे ये प्रणयी प्राण त्राण पाते हैं,
जी भर कर उनको देख जुड़ा जाते हैं।
जब देव कि देवर विचर यहाँ आते हैं,
तब नित्य नये दो एक द्रव्य लाते है।

उनका वर्णन ही बना विनोद सवाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

किसलय-कर स्वागत-हेतु हिला करते हैं,
मृदु मनोभाव सम सुमन खिला करते हैं,
डाली में नव फल नित्य फला करते हैं,
तृण तृण पर मुक्ता-भार झिला करते हैं।

निधि खोले दिखला रही प्रकृति निज माया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा।

वह वधू जानकी बनी आज यह जाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

फल-फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी,
वे हरी पत्तलें, भरी थालियाँ मेरी।
मुनि-बालाएँ हैं यहाँ आलियाँ मेरी,
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी।

क्रीड़ा सामग्री बनी यहाँ निज छाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

मैं पली पक्षिणी विपिन-कुंज-पिंजर की,
आती है कोटर सदृश मुझे सुधि घर की।
मृदु-तीक्ष्ण वेदना एक एक अन्तर की,
बन जाती है कल-गीति समय के स्वर की।

कब उसे छेड़ यह कंठ यहाँ न अघाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

गुरुजन-परिजन सब धन्य ध्येय हैं मेरे,
ओषधियों के गुण-विगुण ज्ञेय हैं मेरे।
वन-देव-देवियाँ आतिथेय हैं मेरे,
प्रिय-संग यहाँ सब प्रेय श्रेय हैं मेरे।
मेरे पीछे ध्रुव धर्म स्वयं ही धाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग तुम लो उड़ान के तोड़े।
गावो दिवि चातक,चटक,भृङ्ग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।
तितली, तूने यह कहाँ चित्रपट पाया?
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

आओ कलापि, निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।
शुक,पढ़ो मधुर फल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

अयि राजहंसि, तू तरस-तरस क्यों रोती,
तू शुक्ति-वंचिता कहीं मैथिली होती।
तो श्यामल तनु के श्रमज-बिन्दुमय मोती,
निज व्यजन-पक्ष से तू अँकोर सुध खोती।
जिन पर मानस ने पद्म-रूप मुँह बाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

ओ निर्झर,झर झर नाद सुनाकर झड़ तू,
पथ के रोड़ों से उलझ-सुलझ, बढ़ अड़ तू।

ओ उत्तरीय उड़, मोद-पयोद घुमड़ तू,
हम पर गिरि-गद्गद् भाव, सदैव उमड़ तू।
जीवन को तूने गीत बनाया, गाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।
ओ भोली कोल - किरात - भिल्ल - बालाओ,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आगई आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो ! नव्यता और भव्यता पाओ।
लो, मेरा नागर भाव भेंट जो लाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।
सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त-संचय में।
तुम अर्ध-नग्न क्यों रहो अशेष समय में,
आओ, हम कातें बुनें गान की लय में।
निकले फूलों का रंग ढंग से ताया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया,

यशोधरा

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात;
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात।
सखि वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते॥

स्वयम् सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,—
क्षात्र धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा?
जिसने अपनाया था, त्यागा;
रहें स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही खाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

जाँय सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से?
आज अधिक वे भाते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

गये लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे,
पर क्या गाते—गाते?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

५—आधुनिक हिन्दी नवीन धारा के कवि

प्रमुख कवि

'प्रसाद', 'निराला', 'पन्त', महादेवी वर्मा,
रामकुमार वर्मा

विशेषताएँ

(१) इस युग के सभी कवियों पर छायावाद का गहरा प्रभाव पड़ा। अव्यक्त और अज्ञात के रूप और शक्ति का संकेत प्रायः कवि की रचना में भासित होता है।

(२) प्रायः सभी कवियों ने परम्परागत रूढ़ियों का विरोध किया। परिमाणस्वरूप छंद, अलंकार एवं सामाजिक मर्यादा के पुराने बंधनों से मुक्त होकर मुक्त छंदों की धारा में स्वच्छंद काव्य को प्रवाहित किया।

(३) इन कवियों ने प्रायः गीत-पद्धति को अपनाया और प्रकृति के विभिन्न पक्षों का विभिन्न दृष्टिकोणों से मानवीकरण किया।

(४) इस युग के कवियों को हम स्वतंत्र चिंतन, स्वतंत्र विषय-चयन, स्वतन्त्र प्रेरणाओं और सामान्य जन-भावनाओं की ओर अधिक उन्मुख पाते हैं।

(५) भाषा-खड़ी बोली है, माधुर्य तथा ओज गुण प्रधान हैं। व्यंजना और लक्षणा-पूर्ण बोली में सुकोमल और करुण भावों को खूब अभिव्यक्ति मिली।

(६) व्यक्तिगत काव्यशैलियों का प्रादुर्भाव हुआ।

प्रमुख ग्रन्थ

आँसू और कामायनी; परिमल, अनामिका, गीतिका, और तुलसी-दास; पल्लव, गुंजन, युगवाणी और स्वर्ण-धूलि; रश्मि, नीरजा, सान्ध्य-गती और दीपशिखा; रूपराशि और चित्ररेखा।

जयशंकर 'प्रसाद'

जीवन-परिचय

आपका जन्म सं० १९४६ विक्रमी में माघ शुक्ल द्वादशी को काशी में हुआ था। आप के पिता बाबू देवीप्रसाद जो 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके यहाँ तम्बाकू का कारबार होता था। परिवार धनी और प्रतिष्ठित था। 'प्रसाद' जी ने कक्षा ८ तक की स्कूली शिक्षा पाई थी, किन्तु घर पर उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली। काशी के साहित्यिक वातावरण से इन्हें रुचि उत्पन्न हो गई और बाल्यकाल से ही कवियों और साहित्यिकों के सत्संग में आ गए। १५ वर्ष की अवस्था में ही इन्हें कविता लिखने की प्रेरणा मिली। सं० १९६३ वि० में सर्वप्रथम 'भारतेन्दु' में इनकी कविता प्रकाशित हुई। पश्चात् 'इन्दु' में इनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगीं। १७ वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता और भाई के देहावसान के कारण घर का कारबार सिर पर आ पड़ा। किन्तु इन्होंने सरस्वती की आराधना न छोड़ी। जीवपर्यन्त नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता, प्रबन्ध काव्य आदि के सर्जन में व्यस्त रहे। ४८ वर्ष की अल्पायु में क्षयरोग के आक्रमण से इनका कार्तिक शुक्ल एकादशी सं० १९९४ वि० को देहावसान हो गया।

मैथिलीशरण गुप्त ने इनके निधन पर लिखा था—

'जय शंकर' कहते-कहते ही फिर भी काशी आवेंगे।
किन्तु 'प्रसाद' न विश्वनाथ का और कहीं हम पावेंगे॥

*

'प्रसाद' के ग्रन्थ

कहानी संग्रह—प्रतिध्वनि, छाया, आँधी, आकाश-दीप, मधुआ, नव-पल्लव।

नाटक—विशाख, राज्यश्री, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, कामना और एक घूँट।

कविता-संग्रह और प्रबन्ध काव्य—प्रेमपथिक, झरना, कानन-कुसुम, लहर, चित्राधार, आँसू और कामायनी।

'प्रसाद' की कविता के गुण

(१) 'प्रसाद' जी जिस समय साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए उस समय उसकी पृष्ठभूमि में हिन्दी साहित्य के सम्मुख निर्माण की तीन दिशाएँ थीं—(१) संस्कृति, (२) कला (३) और सामयिक देश-काल। स्थायी रहने वाले कवि का इन तीनों से प्रभावित होना आवश्यक ही था। 'प्रसाद' जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक कवि ने अपनी प्राचीनतम और नवीनतम संस्कृति के बीज खोजे और उन्हें नए आवरण में पल्लवित किया। 'प्रसाद' जी प्रसिद्ध नाटककार थे। उनके प्रायः सभी आख्यान प्राचीन संस्कृति से लिए गए हैं। 'कामायनी' जैसे गंभीर और रहस्यमय प्रबन्ध काव्य के लिए उन्होंने लिखा है:—"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है।" प्राचीन संस्कृति से उनका प्रेम अगाध ज्ञात होता है। पुराने आख्यानों को नवीन परिस्थितियों में इस प्रकार सजाने का प्रयास कि वे वर्त्तमान समस्याओं के हल के भी प्रतीक बन जावें, 'प्रसाद' जी के अद्भुत काव्य-कौशल का परिचय है। इसके अतिरिक्त कलापक्ष भी 'प्रसाद' जी में विशिष्ट पाया जाता है। सामयिक

देश काल का प्रभाव उनपर पूर्ण रूप से है, यद्यपि सामयिक समस्याओं का हल उन्होंने प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तों की औषधियों द्वारा ही बताया है।

(२) 'प्रसाद' जी ने काव्यारम्भ व्रजभाषा की कविताओं से किया था। पश्चात् वे द्विवेदी युग से प्रभावित हुए और खड़ी बोली की ओर उन्मुख हुए। उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ बड़ी ही सरल और प्रसादपूर्ण हैं। 'प्रेम पथिक' व्रजभाषा में ही लिखा था। अपनी संस्कृतिनिष्ठता के कारण वे काव्य-साहित्य में ध्वन्यात्मक शैली की प्रचुरता लाए। जब इन्होंने नाटक लिखना प्रारम्भ किया तब भी हम इनमें संस्कृतिनिष्ठा की भावना ज्यों की त्यों पाते हैं। भाषा तथा भाव दोनों के क्षेत्र में इन्हें संस्कृति-प्रेम अति प्रिय प्रतीत होता है। शब्दों के प्रयोग में इनका यह मोह अविकल रहा और कभी छूटा ही नहीं।

(३) चूँकि 'प्रसाद' जी एक उत्कृष्ट नाटककार थे और ऐतिहासिक नाटकों में भी मनोवैज्ञानिक संघर्ष तथा मानसिक रहस्यों के उद्घाटन में चतुर कलाकार की भाँति भाव-व्यंजना में प्रवीण थे, अतएव वही मानसिक और मनोवैज्ञानिक संघर्ष की भूमि उनके काव्य में ज्यों की त्यों उतरती आई! आँसू, कामायनी, लहर आदि काव्य इस रहस्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। मानसिक रहस्यों की जो भूमि हमें 'प्रसाद' के काव्य में मिलती है, वह अन्यत्र कहीं नहीं।

(४) 'प्रसाद' जी हिन्दी में छायावाद तथा रहस्यवाद की धाराओं को बाँधने वाले हैं। फलस्वरूप झरना, लहर, आँसू आदि का सृजन हुआ, जिनमें हम 'प्रसाद' की विशिष्ट रहस्यवाद-युक्त कल्पना का रूप पाते हैं।

(५) 'प्रसाद' गहन सौन्दर्यपूर्ण कवि हैं। उन्होंने मार्मिक गीतों की रचना की है। इनके काव्य का चरमोत्कर्ष गीतों में

हुआ है। झरना, आँसू, लहर के गीतों के अतिरिक्त भी नाटकों तथा 'कामायनी' के भीतर जो गीत प्रस्तुत किये गए हैं, वे कल्पना और भावों की दृष्टि से अत्युत्तम हैं। 'प्रसाद' ने अपने गीतों में अपने हृदय को डुबोकर रख दिया है। 'प्रसाद' जी के गीत वर्त्तमान और भविष्य के साहित्यकारों के लिए सदा प्रेरणा देते रहेंगे।

(६) 'प्रसाद' प्रधानतः यौवन और प्रेम के कवि हैं। उनकी कविताओं में सौंदर्य और प्रेम के भाव ओत-प्रोत हैं। भावों की उत्कृष्टता इनका विशेष गुण है। 'झरना', 'आँसू', 'लहर', 'कानन-कुसुम' और 'कामायनी' के सौन्दर्य तथा प्रेम-विषयक स्थल हृदय में भावों को जगा देते हैं।

(७) 'प्रसाद' जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। संभवतः यह इसलिए है कि उन्होंने गूढ़तम भावनाओं और मानस-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति की है, जिसे व्यक्त करने में भाषा की गहनता भी बढ़ गई है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी हम यह निरन्तर उनकी प्रवृत्ति देखते हैं कि भाषा की गूढ़ योजना में वे सिद्धहस्त थे। उनके लिए चाहे वह भले ही स्वाभाविक प्रभाव की वस्तु बन गई हो, किन्तु पाठक के लिए कठिन ही प्रतीत होती है, यद्यपि इस क्लिष्टता से भाषा के प्रवाह में कोई आघात नहीं आया। शब्दों का चयन भावों को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ हुआ है। सामासिक पद्धति का उचित प्रभाव है। शब्द कवि के उपयुक्त वातावरण को व्यक्त करने में नितान्त सहायक हुए हैं। रूपकों की तो संपत्ति-ढेर इनके काव्यों में मिलेगी। 'आँसू' के लिए प्राचीन और नवीन रूपकों की व्यवस्था इनकी एक नवीन विशेषता है। वर्णन बड़े मनोरंजक हैं। पिंगल-प्रयोग में इनकी स्वतंत्रता इस दिशा में नवीन प्रयोग का पथप्रदर्शन है।

(८) प्रसाद जी शैव-दर्शन को माननेवाले हैं। बौद्धदर्शन ने इन्हें विशेष तुष्ट किया है। कवि के लिए 'करुणा' का सहारा अवश्य एक

उत्तम वस्तु है। काव्य का जन्म ही हमारे यहाँ 'करुणा' से माना गया है। 'प्रसाद' 'करुणा' के प्रतिभाशाली कवि हैं। उनके नाटक, उपन्यास, कविताएँ सभी 'करुणा' के सूत्र में बँधे हुए हैं। जीवन में करुणा की अभिव्यक्ति मनुष्य को देवता बनाती है, इसी विश्वास पर इन्होंने अपनी काव्यधारा प्रवाहित की है। इस दिशा में करुणा को प्रेरणा देने और लेने के क्षेत्र में इनसे बढ़कर अन्य कवि न मिलेगा। इनके काव्यगत प्रत्येक प्रसंग का अन्त करुणा-पूर्ण शान्ति में ही होता है। यह दार्शनिक सत्य इनके काव्य का मूलाधार है। प्रसाद जी का अपना निजी काव्यादर्श है।

समालोचकों की दृष्टि में

"प्रसाद जी की उक्तियों के भीतर बड़ी रंजकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेमवेदना की दिव्य विभूति का, विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का, सुख और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया में सौन्दर्य और मंगल के संगम का भी आभास पाया जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"आधुनिक हिन्दी के खड़ी बोली काव्य की उस शैली के प्रवर्त्तक जिसे छायावाद के नाम से पुकारा जाता है—जो व्यंजना-प्रधान है—प्रसाद जी थे।"

बाबू श्यामसुन्दर दास।

"प्रसाद जी ने विषय अधिकांश प्राचीन साहित्य से लिए हैं। पर सबको नवीन भारत के बीजारोपण में विनियुक्त किया है। वह दिन सचमुच हिन्दी-कविता की मुक्ति का दिन था जब कवि ने परिपाटी-विहित-रसज्ञता और रूढ़िसमर्थित काव्य-कला को साथ ही चुनौती दी।

'प्रसाद' जी ने हमारे आलोच्य काल में अपनी भाषा और प्रकाशन-भंगी बदल दी है।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

"कविता के क्षेत्र में प्रसाद जी ने जीवन के रहस्यपूर्ण तथ्यों को रहस्यपूर्ण भाषा में ही प्रदर्शित किया है। वे कहीं-कहीं बहुत मनोवैज्ञानिक हो गए हैं। भावना की चरम अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हमारे सामने आती है।"

डाक्टर रामकुमार वर्मा

"काव्य-क्षेत्र में प्रसाद जी हर्ष-विषादयुक्त मानवी मनोभावों के कवि हैं। वे मानवी मनोवृत्तियों में इतने आकर्षित हैं कि मनुष्य ही उनके चैतन्य की इकाई बन गया है। उनके मनोवृत्यात्मक चित्र प्रायः प्रकृति-सौन्दर्य के साथ संश्लिष्ट हैं।"

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

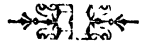

चिन्ता

हिमगिरि उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष, भींगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह!
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन;
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।
दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।
तरुण तपस्वी-सा वह बैठा,
साधन करता सुर-श्मशान;
नीचे प्रलय सिन्धु लहरों का
होता था सकरुण अवसान।
उसी तपस्वी से लम्बे थे
देवदारु दो चार खड़े;
हुए हिम-धवल, जैसे पत्थर
बनकर ठिठुरे रहे अड़े।
अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार;
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार।

चिन्ता कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।
बँधी महा-वट से नौका थी
सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल-प्लावन
और निकलने लगी मही।
निकल रही थी मर्म बेदना
करुणा विकल कहानी सी,
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही,
हँसती सी पहचानी सी।
ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली,
ज्वालमुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप सी मतवाली।
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा,
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जल-माया की चल रेखा!
इस ग्रह कक्षा की हलचल! वह
तरल गरल की लघु लहरी,
जरा अमर जीवन की, और न
कुछ सुनने वाली बहरी।
अरी व्याधि की सूत्रधारिणी!
अरी आधि मधुमय अभिशाप,

हृदय-गगन में धूमकेतु सी,
पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप ।
मनन करावेगी तू कितना ?
उस निश्चित जाति का जीव,
अमर मरेगा क्या ? तू कितनी
गहरी डाल रही है नींव ?
आह घिरेगी हृदय लहलहे
खेतों पर करका-घन सी,
छिपी रहेगी अंतरतम में
सब के तू निगूढ़ धन सी ।
बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिंता
तेरे हैं कितने नाम !
अरी पाप है, तू जा चल जा
यहाँ नहीं कुछ तेरा काम ।
विस्मृति आ अवसाद घेर ले,
नीरवते ! बस चुप कर दे,
चेतनता चल जा, जड़ता से
आज शून्य मेरा भर दे ।"
चिन्ता करता हूँ मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती
जातीं रेखायें दुख की ।
आह सर्ग के अग्रदूत ! तुम
असफल हुए विलीन हुए,
भक्तक या रक्तक, जो समझो
केवल अपने मीन हुए ।

अरी आँधियो ! ओ बिजली की,
दिवा-रात्रि तेरा नर्तन,
उसी वासना की उपासना,
वह तेरा प्रत्यावर्त्तन।
प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
हम सब थे भूले मद में।
भोले थे, हाँ तिरते केवल
सब विलासिता के नद में।

वे सब डूबे, डूबा उनका
विभव बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव-सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार।"
बेला क्षण क्षण निकट आरही
क्षितिज क्षीण फिर लीन हुआ;
उदधि डुबाकर अखिल धरा को
बस मर्य्यादाहीन हुआ।

करका क्रन्दन करती गिरती
और कुचलना था सब का,
पंच भूत का यह तांडवमय
नृत्य हो रहा था कब का।'
"एक नाव थी,- और न उसमें
डांड़े लगते या पतवार;
तरल तरंगों में उठ गिर कर
बहती पगली बारम्बार!
लगते प्रबल थपेड़े, धुँधले
तट का था कुछ पता नहीं;

कातरता से भरी निराशा
देख नियतिपथ बनी वही।
जलनिधि के तलवासी जलचर
विकल निकलते उतराते,
हुआ विलोड़ित गृह, तब प्राणी
कौन! कहाँ! कब! सुख पाते?
घनीभूत हो उठे पवन, फिर
श्वासों की गति होती रुद्ध;
और चेतना थी बिलखाती,
दृष्टि विफल होती थी क्रुद्ध।
उस विराट आलोड़न में, ग्रह-
तारा बुद-बुद से लगते।
प्रखर प्रलय पावस में जगमग,
ज्योतिरिंगणों से जगते।
प्रहर दिवस कितने बीते, अब
इसको कौन बता सकता,
इनके सूचक उपकरणों का,
चिह्न न कोई पा सकता।
काला शासन-चक्र मृत्यु का
कब तक चला न स्मरण रहा,
महा मत्स्य का एक चपेटा
दीन पोत का मरण रहा।
किन्तु उसी ने ला टकराया
इस उत्तर गिरि के शिर से,
देवसृष्टि का ध्वंस अचानक
श्वास लगा लेने फिर से।

आज अमरता का जीवित हूँ
मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का
अधम पात्रमय सा विष्कम्भ।"

वरुणा की कछार

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के काननकुञ्ज।
जगत नश्वरता के लघुत्राण, लता, पादप, सुमनों के पुञ्ज॥
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार॥

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

तुम्हारे कुञ्जों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद।
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद॥
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार?

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

छोड़ कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव-सुलभ दुलार॥
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार॥

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

मुक्ति जल की वह शीतल बाढ़, जगत की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत॥
देव-कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार।
तोड़ सकते हो तुम भव-बन्ध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार॥

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार॥
विश्व-मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर-मन्द्र।
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चन्द्र॥

अरी वरुणा की शान्त कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

तुम्हारा वह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार।
सकल वसुधा को दे संदेश, धन्य होता है बारम्बार॥
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, निश्व-वाणी का बने विहार॥

स्मृति

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाए,
स्वर्गंगा की धारा में
मिलने की भेंट चढ़ाए।

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाए;
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आए!

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को;
प्रतिभा-डाली भर लाता,
कर देता दान सुकवि को।

घन में सुन्दर बिजली सी,
बिजली में चपल चमक सी;
आँखों में काली पुतली,
पुतली में श्याम झलक सी।

कामना सिंधु लहराता,
छविपूर्ण प्रभा थी छाई,
रत्नाकर बनी चमकती
मेरे शशि को परछाईं।

लहरों में प्यास भरी थी,
थे भँवर-पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर,
लुढ़का दी तुमने प्याली!

सुख आहत, शान्त उमंगें,
बेगार साँस ढोने में,
यह हृदय समाधि बना है,
रोती करुणा कोने में!

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना,
भींगी पलकों का लगना।

इस विकल वेदना को ले,
किसने सुख को ललकारा?

वह एक अबोध अकिंचन,
बेसुध चैतन्य हमारा!
उस पार कहाँ फिर जाऊँ
तम के मलीन अञ्चल में?
जीवन का लोभ न है वह,
वेदना छद्म के छल में।
वेदना विकल फिर आई—
मेरी चौदहों भुवन में,
सुख कहीं न दिया दिखाई
विश्राम कहाँ जीवन में?
उच्छ्वास और आँसू में,
विश्राम थका सोता है,
रोई आँखों में निद्रा,
बनकर सपना होता है।
('आँसू' से)

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जीवन-परिचय

'निराला' जी का जन्म संवत् १९५५ विक्रमी में मेदिनीपुर जिले के महिषादल नामक राज्य (बंगाल) में हुआ। वास्तव में इनके पिता उन्नाव जिले के गढ़ाकोला गाँव के निवासी थे। किन्तु जीविकोपार्जन के सहारे वे बंगाल चले गए। बंगाल में उत्पन्न होने के कारण 'निराला' जी की शिक्षा-दीक्षा का प्रारम्भ बँगला और संस्कृत में हुआ। पश्चात् इन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी और ब्रजभाषा से अपना अच्छा परिचय कर लिया। पहिले तो इन्होंने बँगला और संस्कृत में कविता करना प्रारम्भ किया, किन्तु पश्चात् ये हिन्दी की ओर उन्मुख हुए। हिन्दी का प्रेम इन्हें अपनी स्वर्गीया धर्मपत्नी से प्राप्त हुआ। वे नित्य रामायण का पाठ किया करती थीं। 'रामचरितमानस' ही एक प्रकार से इनके हिन्दी-ज्ञान का गुरु है।

बंगाल के वातावरण का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। रवीन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द और उनके अद्वैतवाद ने 'निराला' जी को अद्वैतवादी और निर्भीक बना डाला। संगीत के ये अच्छे जानकार हैं। हिन्दी-काव्य की अभिरुचि के सिलसिले से ही ये उत्तर-प्रदेश चले आए और तब से अब यहीं रम गए हैं। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली और हृदय बालकोचित स्नेह और वात्सल्य से भरपूर है। 'निराला' जी काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक कवि हैं। उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं:—

काव्य—परिमल, अनामिका, गीतिका, तुलसीदास, अणिमा, कुकुरमुत्ता आदि।

उपन्यास—अप्सरा, अलका, निरुपमा, कुल्लीभाट, बिल्लेसुर-बकरिहा।

कहानी—सखी, लिली और सुकुल की बीवी।

निबन्ध—प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा।

आलोचना—रवीन्द्र कविता-कानन, चाबुक।

काव्यगत विशेषताएँ

(१) 'निराला' जी हिन्दी कविता की बाह्यकला में स्वतन्त्रता के वाहक हैं। हिन्दी में मुक्तछन्द का महान् प्रवर्त्तक इन्हीं को कहना चाहिए। इन्होंने हिन्दी में स्वच्छन्द छन्द की सृष्टि की है। 'निराला' जी पिंगल शास्त्र के बन्धन से मुक्त काव्यधारा के आधार हैं। इनके मुक्त छन्द दो प्रकार के हैं—(१) तुकान्त और (२) अतुकान्त। भाव-स्वातंत्र्य और वाक्-स्वातंत्र्य का प्रवाह इनकी देन है।

(२) 'निराला' जी ने काव्य के विविध अंगों तथा भावनाओं को व्यक्त किया है। कला-पक्ष में वे स्वतन्त्रता के प्रचारक हैं। उसी भाँति काव्य-विषय के चयन में भी वे स्वतन्त्रता के प्रतीक हैं। मानव-हृदय तथा प्रकृति-जगत् के सरल और कठिन सभी प्रसंगों को उन्होंने अपनाया है। साहित्यिक-रूढ़ियों के वे शिकार नहीं हुए। मानव-जीवन में निरन्तर सोची जाने वाली वस्तुओं और विषयों पर भी उन्होंने कविता की है। उनकी 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुकुर-मुत्ता' रचनाएँ बड़ी जनप्रिय हैं। इस प्रकार हम उनमें ऐसे कवि का हृदय पाते हैं जो गहनतम वेदान्त को भी वर्ण्य विषय बनाता है और जीवन के सामान्य प्रसंगों तथा विषयों में भी काव्य-लालित्य प्रसारित कर सकता है। उनमें यह एक विशेष मौलिकता है। निराला जी कवि और दार्शनिक दोनों हैं। एक ओर दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण उनके काव्य में हमें मिलती है तो दूसरी ओर 'भिक्षुक,' 'विधवा,' 'वन्ध्या,' 'इलाहाबाद के पथ पर' में उनके करुण कोमल हृदय की सुन्दर अभिव्यक्ति

हम पाते हैं। सारांशतः उनमें बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा है।

(३) 'निराला' जी की कविताओं में भावों का विकास, क्रमिक वर्णन का सुन्दर अभिव्यंजनापूर्ण चित्र, कल्पनाओं की सुन्दर समृद्धि, कारुणिक भावों के सुन्दर स्वरूप, संगीत का सुन्दरतापूर्ण नाद और ध्वनि हमें सर्वत्र मिलती है। संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का प्रयास निराला जी ने किया है।

(४) 'निराला' जी की भाषा संस्कृत से परिपूर्ण है। उसमें सुचारुता है। समास-गुम्फित पदावली, लाक्षणिक विलक्षणता, काव्य-बद्ध पदों की स्वच्छंद विषमता देखने योग्य है। कहीं-कहीं पर गीतों में उनकी भाषा अति सरल हो गई है। इनकी शैली पर बँगला शैली का प्रभाव अधिक पड़ा है।

(५) वस्तुओं का वास्तविक चित्रण करना निराला जी की कविता का एक विशेष गुण है।

समालोचकों की दृष्टि में

'अद्वैतवाद की कठिन और सुसंस्कृत विचारधारा का प्रकाशन 'निराला' जी की कविता में सफलतापूर्वक हुआ है। विचार-धारा की जटिलता के कारण इनकी कविता कहीं-कहीं पर जटिल हो गई है।'

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

"कवि ने अपने भावों की विरलता के कारण छंद को भी विरल और मुक्त बना दिया है।"

—डा० रामकुमार वर्मा।

"हिन्दी में मुक्त छंद का प्रवर्त्तन 'निरालाजी' की सर्वोपरि विशेषता है।"

—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी।

"निराला' जी ने रूढ़ि-मुक्त होकर अपनी बात कही है।"

—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।

"छंद बंध ध्रुव तोड़, फोड़ कर पर्वत कारा,
अचल रूढ़ियों की, कवि तेरी कविता धारा।
मुक्त अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत,
गलित, ललित, आलोकराशि, चिरअकलुष, अविजित
अमृतपुत्र कवि, यशःकाय तव जरामरणजित
स्वयं भारती से तेरी हृत्तंत्री झंकृत!

"पन्त"

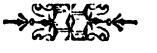

तुम और मैं

तुम तुङ्ग हिमालय शृंग, और मैं चंचल-गति-सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास, और मैं कान्त कामिनी कविता।

तुम प्रेम—और मैं शान्ति
तुम सुरा-पान-घन-अन्धकार, मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।

तुम दिनकर के खर-किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान।

तुम योग—और मैं सिद्धि
तुम हो रागानुग निश्छल तप, मैं शुचिता सरल समृद्धि।

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घन-विटप, और मैं सुख-शीतल-तल शाखा।

तुम प्राण और मैं काया।
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म, और मैं मनमोहनी माया।

तुम प्रेममयी के कंठहार, मैं वेणी काल-नागिनी।
तुम कर-पल्लव झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी।

तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु
तुम हो राधा के मनमोहन, मैं उन अधरों की वेणु।

तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा।

तुम नभ हो मैं नीलिमा
तुम शरद्-सुधाकर कला हास, मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।

तुम गंध कुसुम कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति प्रेम जंजीर।

तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति

तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति।

तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक कल कूजन तान।
तुम मदन-पंचशर हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान।

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना

तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तड़ित्तूलिका रचना।

तुम रण-ताण्डव उन्माद-नृत्य, मैं युवति मधुर नूपुर ध्वनि।
तुम नाद-वेद ओंकार-सार, मैं कवि शृंगार-शिरोमणि।

तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति

तुम कुन्द, इन्दु अरविन्द शुभ्र, तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

—परिमल से

निराला

वसन्त-समीर

आओ आओ नील सिन्धु की
कम्प, तरङ्गों से उठ कर
पृथ्वी पर, वन की वीणा में
मृदु मर्मर भर मर्मर स्वर!
भरो पुलक नव प्रेम-प्रकंपित।
कामिनियों के नव तन में,
खोलो नवल प्रात-मुख ढक-ढक
अलख बादलों से, क्षण में।

नवल प्राण नव गान गगन में
फूटें नवल वृन्द पर फूल।
भरें जागरण की किरणों से
जग के जीवन के युग कूल।

इसी प्रखर नव कर धारा में
अपनी नौका की पतवार
पकड़ूँ दृढ़, अनुकुल रहो तुम
पहुँचूँ प्रिय, जीवन के पार
चीर विषम प्रतिकूल तरङ्गें
भीम भयंकर भँवर गहन,
दृढ़ सहता निस्संग मौन रह,
ज्योति-सिंधु-ज्वाला असहन!

वहाँ कहाँ कोई अपना! सब
सत्य नीलिमा में लयमान;

केवल मैं, केवल मैं, केवल
मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान।

पुष्प मञ्जरी के उर की प्रिय
गन्ध मन्द गति ले आओ!
नव-जीवन का अमृत मंत्र स्वर
भर जाओ फिर भर जाओ!
यदि आलस से विपथ नयन हों
निद्राकर्षण से अति दीन,
मेरे वातायन के पथ से
प्रखर सुनाना अपनी बीन!

वीणा की नव चिर परिचित तव
वाणी सुनकर उठूँ तुरन्त,
समझूँ जीवन के पतझड़ में
आया हँसता हुआ वसन्त!

मुरझाया था जग पतझड़ में
आया था चिंता का काल
द्रुम-ललाट से प्रतिफल झरते
शिशिर-बिंदु-श्रम शिथिल सकाल,
विकृत अङ्ग, सब रिक्त रङ्ग था,
प्रजा हुई थी दीन मलीन,
सब जग निज जीवन की जटिल
समस्या ही में था तल्लीन;

उसी समय दी खोल हृदय की
ग्रन्थि, खुल गये उर के द्वार,
देखा, नव-श्री-सुख-शोभा से
लहराता जग विविध प्रकार

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

जीवन-परिचय

पन्तजी का जन्म संवत् १९५७ विक्रमी में अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक ग्राम में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-कुल में हुआ। इनके पिता का नाम पं० गंगादत्त पन्त था, जो बड़े ही धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। पन्तजी संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला भाषा तथा साहित्य के अच्छे ज्ञाता हैं। मनोरम पर्वतीय प्रदेश में जन्म तथा बाल्यकाल होने के नाते इनमें प्रकृति की मधुरता, शान्ति और सुकुमारता भर गयी। कवि-हृदय प्रकृति के प्रसाद को पाकर पल्लवित हो उठा और अपने स्वर को प्रकृति के तार से मिलाने का प्रयास करने लगा।

'पन्तजी' पर नवागत छायावाद तथा रहस्यवाद का गंभीर प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजी की रोमांटिक मधुर भाव-प्रकाशन-शैली इन्होंने सफलता-पूर्वक अपनायी है। पन्तजी आज के युग के एक युगान्तरकारी कवि हैं। पंत जी इस समय उदात्त सामाजिक आदर्शों की प्रतिष्ठा कर अपनी रचनाओं में मानवतावादी संदेश दे रहे हैं। वे हमारे आज के नव-निर्माण के पथ-प्रदर्शक हैं।

मुख्य-ग्रन्थ

काव्य—पल्लव, वीणा, ग्रंन्थि, गुंजन, युगान्त, पल्लविनी, युगवाणी, ग्राम्या, उत्तरा, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि।

नाटक :—ज्योत्स्ना।

काव्यगत विशेषताएँ

(१) पन्तजी प्रधानतः प्राकृतिक सौन्दर्य के कवि हैं। उनके हृदय-पटल पर प्रकृति की छाया बालपन से ही पड़ गयी थी। उसी गंभीर प्रभाव का स्वरूप हम उनके काव्य में सर्वत्र पाते हैं। मनुष्य की भाँति प्रकृति का भी एक अति रमणीय संसार है। उस संसार को जितना पन्तजी ने आत्मसात् किया है, उतना कोई नहीं कर सका। आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल के शब्दों में यह भली-भाँति माना जा सकता है:—"छायावाद के भीतर माने जानेवाले सब कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेम-सम्बन्ध 'पन्त' जी का ही दिखाई पड़ता है।" प्राकृतिक दृश्यों के निरन्तर साहचर्य ने इस कवि को अपनी सुकुमारता और नवीन मधुरिमा प्रदान की है। कवि के भीतर इस प्राकृतिक देन ने विकास भी सुन्दर पाया है।

(२) कवि में भाषा के सौन्दर्य का अद्भुत सुकुमार स्वरूप हमें देखने को मिलता है। काव्य-भाषा के सम्बन्ध में स्वयं पन्तजी का विचार यह है—'जिस प्रकार बड़ी चुवाने से पहिले उड़द की पीठी को मथ कर हलका तथा कोमल कर लेना पड़ता है, उसी प्रकार कविता के स्वरूप में, भावों के ढाँचों में ढालने के पूर्व भाषा को भी हृदय के ताप में गला कर कोमल, करुण, सरस, प्रांजल कर लेना पड़ता है।" इस उक्ति के अनुसार ही पन्तजी ने अपने काव्य के लिए उपयुक्त शब्द-चयन की सफल साधना की है।

इनके जैसे मृदुल और कोमल शब्दों का सुन्दर व्यवहार अन्यत्र पाना कठिन है। अलंकारों का आगम भावुकता की गोद से हुआ है तथा पिंगल के क्षेत्र में अपना एक स्वतंत्र पथ निश्चित किया है।

(३) जीवन के प्रारम्भिक काल में सौन्दर्य और कल्पना के क्षेत्र में इस कवि ने मन भर कर विचरण किया है। परन्तु जीवन

के मध्याह्न काल में जगत् का चतुर्दिक् दर्शन करके 'परिवर्त्तन' जैसी कविता में हम कवि को एक ऊँचे स्तर पर आसीन पाते हैं, जहाँ उनके जीवन-दर्शन का हमें आभास मिलता है। 'परिवर्त्तन' में 'पन्तजी' की सभी काव्य-कला-सम्बन्धी विशेषताओं का सुन्दर परिचय मिल जाता है।

(४) पन्तजी रहस्यवाद के क्षेत्र में भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये समाजवादी व्यवस्था में लोक का हित समझते हैं, पर व्यक्तिगत साधन का मूल्य भी इनकी दृष्टि में एक विशेष स्थान रखता है। मानव की महत्ता की प्रतिष्ठा में इनका विश्वास है—'मानव तू सबसे सुन्दरतम।' समाज की निम्न कोटि में स्थित परित्यक्त प्रसंगों और वस्तुओं को ले कर भी इन्होंने काव्य की सृष्टि की है। पूरे समाज का स्वरूप इन की काव्य-प्रेरणाओं का स्रोत बना है, एक वर्ग विशेष नहीं।

(५) व्यक्तित्व, रहन-सहन, आचरण, वेशभूषा आदि सभी में पन्तजी जी सुन्दर कविता के आचरण से आवृत्त हैं। उन का स्वर मधुर, विनम्र और सरलता से भरा हुआ, व्यवहार सौजन्यपूर्ण और निष्कपट, निरभिमान और मनुष्यता में अटल विश्वास आदि उनके ऐसे गुण हैं, जिन का आभास उन की कविता तथा उनके व्यक्तित्व में मूर्त्त देखा जा सकता है।

(६) आज के 'पन्त' देश, समाज और विश्व के नवनिर्माण में संलग्न होकर मानवता एवं लोक-संस्कृति के विकास की दिशा में गतिशील हैं, उनका नवीन काव्य इसी के संदेश से ओत-प्रोत है।

समालोचकों की दृष्टि में

"पन्तजी की रहस्यभावना स्वाभाविक ही रही। 'वाद' का साम्प्रदायिक स्वरूप उन्होंने शायद ही कहीं ग्रहण किया हो।

प्रकृति के सुन्दर स्वरूपों की आह्लादमयी अनुभूति उनकी एक बड़ी विशेषता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"पन्तजी प्रकृति के सबसे सुकुमार कवि हैं। कविता जैसे उनके हृदय से निर्झरिणी के समान फूट निकली है। इनका 'मौननिमंत्रण' हिन्दी कविता का अमर वरदान है। वे एक युगान्तरकारी कवि हैं और किसी भी साहित्यक को उन पर गर्व हो सकता है।"

—डॉ० रामकुमार वर्मा

"कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की कविताओं में निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण का सबसे अधिक प्रकाश हुआ है।"

— आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान;
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने नक्षत्रों से कौन?
निमन्त्रण देता मुझको मौन!

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार,
न जाने, तपक तड़ित में कौन?
मुझे इंगित करता तब मौन!

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर-के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खिल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन?
सँदेशा मुझे भेजता मौन!

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिन्धु में पथ कर फेनाकार;
बुलबुलों का व्यापक संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन?
न जाने मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर,
विश्व को जब देती है बोर,
विहग-कुल की कल कण्ठ हिलोर
मिला देती भू नभ के छोर,

न जाने-अलस-पलक-दल कौन!
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झंकार
कँपा देती तंद्रा के तार;

न जाने, खद्योतों से कौन!
मुझे पथ दिखलाया है मौन!

कनक-छाया में जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुञ्जार;

न जाने, दुलक ओस में कौन!
खींच लेता मेरे दृग मौन!

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण-अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
जुड़ाती जब मैं आकुल प्राण;

न जाने मुझे स्वप्न में कौन!
फिराता छाया जग में मौन!

न जाने कौन, अये द्युतिमान!
जान मुझको अबोध, अज्ञान,

सुझाते हो तुम पथ अनजान
फूँक देते छिद्रों में गान;

अहे सुख दुख के सहचर मौन!
नहीं कह सकती तुम हो कौन!

बापू के प्रति

तुम मांसहीन तुम रक्तहीन,
हे अस्थि-शेष! तुम अस्थि-हीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की,
जिसमें असार भव-शून्य लीन;
आधार अमर, होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन!
तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त-अस्थि,—
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य; तुम्हारा निःस्व-त्याग
है विश्व भोग का वर साधन।
इस भस्म-काम तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन,
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन!
सादियों का दैन्य-तमिस्र तूम,
धुन तुमने काते प्रकाशसूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी
बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत।

जग पीड़ित छूतों से प्रभूत,
छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत!
तुमने पावन कर मुक्त किये
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत!

सुख-भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज!
जड़ता हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र-ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

पशु - बल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम-युक्ति;
वर श्रम प्रसूति से की कृतार्थ
तुमने विचार-परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त!
सर्वस्व-त्याग को बना भुक्ति!

सहयोग सिखा शासित जन को
शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से
रोका मिथ्या का बल प्रहार;
बहु भेद-विग्रहों में खोई
ली जीर्ण जाति क्षय से उबार,

तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ अन्धकार को अन्धकार

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग-युग का विषयजनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निनाद।
रँग रँग खद्दर के सूतों में,
नव-जीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवी कला के सूत्रधार!
हर दिया यन्त्र कौशल-प्रवाद।

जड़वाद जर्जरित जग में तुम
अवतरित हुए आत्मा महान,
यन्त्राभिभूत युग में करने
मानव जीवन का परित्राण;
बहु छाया बिम्बों में खोया
पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्त मांस प्रतिमाओं में
फूँकने सत्य से अमर प्राण!

संसार छोड़ कर ग्रहण किया
नर-जीवन का परमार्थ-सार,
अपवाद बना मानवता के
ध्रुव नियमों का करने प्रचार;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित!
तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने
तुम हुए अलौकिक हे उदार!

तुम विश्व मंच हुए उदित
बन जगजीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिये मन से
कर नर-चरित्र का नवोद्धार;
आत्मा को विषयाधार बना,
दिशि-पल के दृश्यों को सँवार,
गा गा 'एकोऽहं बहु स्याम'
हर लिये भेद, भव-भीति-भार।

साम्राज्यवाद था कंस, बन्दिनी
मानवता पशुबलाक्रान्त,
शृंखला दासता, प्रहरी बहु,
निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रान्त;
कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानव आत्मा को मुक्त-कान्त
जन शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत-पद प्रणत, शान्त!

कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति
बहु धर्म जाति-गत रूप-नाम,
बन्दी जग-जीवन, भू विभक्त,
विज्ञान-मूढ़ जन प्रकृति-काम;
आये तुम मुक्त पुरुष, कहने—
मिथ्या जड़ बन्धन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः,
जय ज्ञान-ज्योति, तुमको प्रणाम

परिवर्तन

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?
भूतियों का दिगंत छबि जाल,
ज्योतिर्चुंबित जगती का भाल?

राशि राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार?
स्वर्ग की सुखमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार!
प्रसूनों के शाश्वत शृंगार,
(स्वर्ण मृगों के गंध विहार)
गूंज उठते थे बारंबार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार!
नग्न सुन्दरता थी सुकुमार,
ऋद्धि औ सिद्धि अपार!

अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न संस्कृत का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात?
दुरित, दुख, दैन्य न थे जब ज्ञात।
अपरिचित जरा मरण भ्रू पात!
हाय! सब मिथ्या बात!—
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस!
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती—जीवन है भार!
आज पावस नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न कराल;

प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल !

खोलता इधर जन्म लोचन,—
मूंदती उधर मृत्यु क्षण क्षण;
अभी उत्सव औ हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु उच्छ्वास !
अचिरता देख जगत जी आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप,
ओस के आँसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन !
अहे निष्ठुर परिवर्त्तन !
तुम्हारा ही तांडव-नर्त्तन !
विश्व का करुण विवर्त्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुंडल
दिङ्मंडल !

अहे दुर्जेय विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन-तल माथ;
घूमते शतशत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ ।

तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद-मर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खण्डित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर संचित !
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकम्प,—तुम्हारे विपुल सैन्यदल !
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-हिल उठता है टलमल

पद दलित धरातल !
जगत का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय-सूचन
निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
काल का अकरुण भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास
विश्व का अश्रु-पूर्ण इतिहास ।
तुम्हारा ही इतिहास !

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयंकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर !
आह भीषण उद्गार !—
नित्य का यह अनित्य नर्तन,
विवर्त्तन जग, जग व्यावर्त्तन,

अचिर में चिर का अन्वेषण
विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन !
अतल से एक अकूल उमंग,
सृष्टि की उठती तरल तरङ्ग
उमड़ शत-शत बुदबुद संसार
बूड़ जाते निःसार !
बना सैकत के तट अतिवात-
गिरा देती अज्ञात !
आज का दुख कल का आह्लाद
और कल का सुख आज विषाद,
समस्या स्वप्न गूढ़ संसार
पूर्ति जिसकी उस पार।
जगत जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास !
एक औ बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र समान,
जगत के उर में छोड़ महान
गहन चिह्नों में ज्ञान।

परवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर,
अभिनय करते विश्व मञ्च पर तुम मायाकर !
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते सङ्केतों में प्रकट अगोचर;
शिक्षास्थल यह विश्व मञ्च, तुम नायक नटवर,

प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल व्याप्त सूत्रधर
दमारे निज सुख दुःख, निश्वास
तुम्हें केवल परिहास

हमारा चिर आश्वास !
ऐ अनन्त हृत्कम्प ! तुम्हारा अविरत स्पंदन
सृष्टि शिराओं में संचारित करता जीवन;
खोल जगत के शत शत नक्षत्रों से लोचन
भेदन करते अन्धकार तुम जग का क्षण क्षण,
सत्य तुम्हारी राज-यष्टि, सम्मुख नत त्रिभुवन,
भूप अकिंचन
अटल शान्ति नित करते पालन !

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार !

अहे महांबुधि ! लहरों से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर,
तुङ्ग तरंगों से शत युग, शत शत कल्पांतर
उगल महोदर में विलीन करते तुम सत्वर,
शत सहस्र रवि,शशि, असंख्य ग्रह उपग्रह, उडगण,
जलते बुझते हैं स्फुलिंग से तुम में तत्क्षण,
अचिर विश्व में अखिल दिशावधि,कर्म,वचन,मन
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्त्तनहीन विवर्तन !

मानव

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सब से सुन्दरतम
निर्मित सब की तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !

यौवन ज्वाला से वेष्टित तन
मृदु त्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रंग !

धावित कृश नील शिराओं में
मदिरा से मादक रुधिर धार,
आँखें हैं दो लावण्य लोक,
स्वर में निसर्ग संगीत सार !

पृथु उर, उरोज ज्यों सर, सरोज,
दृढ़ बाहु प्रलंब प्रेम बंधन,
पीनोरु स्कंध जीवन तरु के,

कर,पद,अंगुलि, नखशिख शोभन !

यौवन की मांसल, स्वस्थ गंध,
नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग !
आह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल,
आः प्रथम प्रेम का मधुर स्वर्ग !

आशाऽभिलाष उच्चाकांक्षा,
उद्यम अजस्र विघ्नों पर जय,
विश्वास, असद् सद् का विवेक,
दृढ़ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय !

मानसी भूतियाँ ये अमंद
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,—
जो स्तंभ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय—स्वभाव पूर्ति !

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास

विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश !
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव ?

महादेवी वर्मा

जीवन-परिचय

आधुनिक काव्य की मीराँ, श्रीमती महादेवी जी का जन्म सं० १९६२ विक्रमी में फर्रुखाबाद में हुआ। इनके पिता का नाम बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा था जो लखनऊ में एक कालेज के प्रोफेसर रहे। इनका बचपन इन्दौर में बीता। सन् १९३२ ई० में आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा पास की। आप सदा से गम्भीर चिन्तन और अध्ययन की उपासिका है। करुणा से ही आप विशेष प्रभावित हैं। करुणा के गीतों से ही आपने अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया है। आप आजकल प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रिंसिपल और साहित्य-संसद की संयोजिका हैं। चित्रकला में आपकी विशेष रुचि है। इस समय आप प्रदेशीय कौंसिल की मनोनीत सदस्या है। आप के संवेदनादूर्ण व्यक्तित्व में उदात्त प्रेरणा देने की शक्ति है।

काव्य की विशेषताएँ

(१) हिन्दी-कविता के नवीन क्षेत्र में महादेवी वर्मा का स्थान सर्वोच्च है। आप रहस्यवादी कवियों में प्रमुख गिनी जाती हैं। वेदना की कल्पनाएँ इनकी बड़ी मार्मिक होती हैं। भावों का उत्कर्ष और करुणा का सुन्दर पुट इनकी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं।

(२) इनके प्राय: सभी गीतों में रहस्यात्मक संकेत और भावनाओं की संयत विवृति पायी जाती है। गीतों के आधार में वियोग और वेदना

के मूल भाव निहित रहते हैं। जीवन के करुण भावों को प्रकृति की पृष्ठ-भूमि में व्यक्त करने की कुशलता इनमें अद्वितीय है।

(३) भाषा सुन्दर, कोमल और प्रवाहयुक्त होती है। शब्दों की व्यंजना अत्यन्त अनूठी और गीतों के रूपक मार्मिक एवं सुन्दर संकेतों से समृद्ध हैं।

(४) महादेवी की काव्य-साधना कारुणिक हृदय पर अवलम्बित है। सांकेतिक रूप से विरह भावना की अभिव्यक्ति उनकी मधुर साधना है। भावों के काल्पनिक संसार की वे साक्षात् महादेवी हैं।

(५) इनकी कविता में चित्रमयिता का विशेष गुण है, जो इनकी सूक्ष्म कल्पना का विशद रूप स्पष्ट करता है।

(६) अपने मर्मस्पर्शी शब्द-चित्रों द्वारा कल्पना और अनुभूति दोनों के संचरण के लिए महादेवी जी का काव्य, एक मधुर वेदनामय वातावरण का निर्माण करने की शक्ति रखता है!

रचित-ग्रन्थ

पद्य—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा, दीपशिखा।

गद्य—अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, शृङ्खला की कड़ियाँ।

आलोचकों की दृष्टि में

"हिन्दी-साहित्य में करुण-रस की सबसे अधिक सफल कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा हैं। उन्होंने जीवन के संपूर्ण करुण चित्रों को देखा है और उन्हें अपने आँसुओं से लिखा है। इनकी कविता में रहस्यवाद का सर्वत्र संकेत है।"

—डा० रामकुमार वर्मा

"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता

है न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"निःसंदेह महादेवी वर्मा की कविताओं में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक शान्ति मिलती है।"

—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

गीतमाला

[१]

मैं बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी,
उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिन्दी निराली !

रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुख पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली,
बह चली निश्वास की मृदु
बात मलय निकुंजावली !

सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से,
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली !
मैं बनी मधुमास आली ।

[२]

प्रिय ! सान्ध्य गगन
मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !

साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन—
यह अश्रुमती हँसती चितवन !
लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गंध धीर,
सुरभित है जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

[३]

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ !

नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में
कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ, सुनहली दामिनी भी हूँ !

नाश भी हूँ मैं अनंत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!

[४]

कितनी रातों की मैंने
नहलायी है अँधियारी,
धो डाली है संध्या के,
पीले सेंदुर से लाली;
नभ के धुँधले कर डाले
अपलक चमकीले तारे,
इन आहों पर तैरा कर
रजनी कर पार उतारे।

बह गई क्षितिज की रेखा
मिलती है कहीं न हेरे,
भूला सा मत्त समीरण
पागल-सा देता फेरे।
अपने उर पर सोने से
लिखकर कुछ प्रेम-कहानी,
सहते हैं रोते बादल,
तूफानों की मनमानी।

इन बूँदों के दर्पण में
करुणा क्या झाँक रही है?
क्या सागर की धड़कन में
लहरें बढ़ आँक रही हैं?

पीड़ा मेरे मानस से
भींगे पट सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी हैं।

मुझमें विक्षिप्त झकोरे!
उन्माद मिला दो अपना,
हो नाच उठे जिसको छू,
मेरा नन्हा-सा सपना!

पीड़ा टकरा कर फूटे,
घूमे विश्राम विकल सा,
तम बढ़े मिटा डाले सब
जीवन काँपे चलदल-सा।

फिर भी इस पार न आवे
जो मेरा नाविक निर्मम,
सपनों में बाँध डुबाना
मेरा छोटा-सा जीवन

[६]

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या!
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,

भर लाई हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या!

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय,
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेल-खेल थक-थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या ?

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला
तेरी ही स्मितमिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषमय क्या !

रोम-रोम में नन्दन पुलकित,
साँस-साँस में जीवन शत-शत,
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय क्या !

चेतना-दीप

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदुतन !
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल !
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल !

सारे शीतल कोमल नूतन
माँग रहे तुमसे ज्वाला कण,
विश्व शलभ सिर धुन कहता मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल !
सिहर-सिहर मेरे दीपक जल !

जलते नभ से देख असंख्यक
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत् से घिरता है बादल !
बिहँस-बिहँस मेरे दीपक जल !

द्रुम के अङ्ग हरित कोमलतम
ज्वाला को करते हृदयंगम;
वसुधा के जड़ अन्तर में भी,
बन्दी है तापों की हलचल !
बिखर-बिखर मेरे दीपक जल !

मेरे निश्वासों से द्रुततर
सुभग न तू बुझने का भयकर;
मैं अंचल की ओट किये हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल!
सहज सहज मेरे दीपक जल।

सीमा ही लघुता का बंधन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल!
सजल सजल मेरे दीपक जल!

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरन्तर;
तम के अणु अणु में विद्युत्-सा
अमिट चित्र अंकित करता चल!
सरल सरल मेरे दीपक जल!

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुलखिल!
मंदिर मंदिर मेरे दीपक जल!

प्रियतम का पथ आलोकित कर!

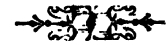

डॉ० रामकुमार वर्मा

जीवन-परिचय

डॉक्टर रामकुमार वर्मा का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले में सं० १९६२ विक्रमी में हुआ था। आपके पिता का नाम लक्ष्मीप्रसाद था। अपने पिता के साथ रामकुमार जी बचपन में कई स्थानों पर रहे। मराठी प्रान्त में आपको चार वर्ष तक मराठी की शिक्षा मिली। हिन्दी के प्रति अभिरुचि उनकी माता राजरानी की प्रेरणा के कारण हुई। वे नित्य तुलसी और मीराँ के पद गाया करती थीं। इन गेय गीतों का प्रभाव बाल-हृदय पर ऐसा पड़ा जिसने रामकुमार को 'भक्तिभावना' के प्रति झुकाया। वर्मा जी को वास्तव में कविता की प्रेरणा अपनी माता जी से ही मिली।

अपने प्रारम्भिक-शिक्षा के गुरु श्री विश्वम्भर प्रसाद गौतम 'विशारद' तथा उनके बड़े भाई कवि रघुनाथ प्रसाद जी के काव्य एवं सत्संग का प्रभाव भी इन पर गहरा हुआ। सन् १९२० में इन्होंने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १९२१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में भावुक रामकुमार जी ने स्कूल छोड़ दिया। इसी समय 'देशसेवा' नामक कविता पर ५१ रु० का 'खन्ना' पुरस्कार मिला। उत्साहवर्धन के हेतु इनकी माताजी ने भी ५१ रु० दिए। सन् १९२३ में पुनः पढ़ना प्रारम्भ किया। सन् १९२५ में राबर्टसन कालेज, जबलपुर से इन्होंने एफ० ए० की परीक्षा पास की और सन् १९२९ में प्रयाग विश्व विद्यालय से एम० ए० की परीक्षा हिन्दी लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसी समय उनकी योग्यता पर मुग्ध हो कर इन्हें, इसी विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने का काम मिल गया। कुछ समय

के लिये ये मध्यप्रान्त के डिप्टी डाइरेक्टर शिक्षा विभाग भी रहे, किन्तु प्रयाग विश्वविद्यालय में ही आप लौट आए। वे नागपुर विश्वविद्यालय के पी० एच० डी० हैं। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि, समालोचक, नाटककार और इतिहासकार हैं। तुलसी और मीरा उनके अध्ययन के प्रिय विषय हैं। कबीर के रहस्यवाद की ओर इनकी विशेष रुचि है। वर्मा जी हिन्दी साहित्य की सेवा में निरन्तर प्रयत्नशील हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उनके ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

काव्य—चित्तौड़ की चिता, अंजलि, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, निशीथ, संकेत।

नाटक—पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, पुरस्कार आदि।

गद्य-काव्य — हिमहास। मां का हृदय (उपन्यास)

समालोचना—साहित्य समालोचना, कबीर का रहस्यवाद, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, संत कबीर आदि।

काव्य-विशेषताएँ

(१) आप हिन्दी के अध्ययनशील कवि हैं। आपने भारतीय और यूरोपीय दर्शन तथा सूफीवाद का गंभीर अध्यायन किया है। इस रहस्यवाद का इनकी कविता पर गहरा असर पड़ा है। ये कल्पनाप्रधान होते हुए भी 'चित्ररेखा' तक आते-आते अनुभूति-प्रधान हो गए हैं। इनकी रहस्यवादी रचनाओं में आनन्द की सत्ता अन्त तक बनी रहती है।

(२) इनकी वर्णनात्मक और गीतात्मक दो सफल शैलियाँ हैं। इनका गीत काव्य उच्च कोटि का है। उनके गीतों में पद-पद पर तन्मयता और भावों की अभिनयात्मक व्यंजना हुई है।

वर्मा जी प्रकृति-प्रेम और करुण के कवि हैं। उनके हृदय का प्रेम एवं इनकी शृंगार भावनाओं ने इन में ही विश्राम

पाया है। इनकी अभिव्यक्ति का आधार प्रकृति का सुन्दर चित्रण ही है। इन्होंने प्रकृति का स्वाभाविक और यथातथ्य चित्रण किया है।

(४) इनकी भाषा खड़ी बोली है जिसमें शुद्ध हिन्दी शब्दों का प्रयोग है। उसमें प्रसाद एवं मधुर गुणों का आधिक्य तथा सजीवता है। अलंकारों में उपमा और रसों में शृङ्गार इन्हें प्रिय हैं।

आलोचकों की दृष्टि में

"कल्पना और अनुभूति का यह कवि हमारे यहाँ विशुद्ध रहस्य-वाद का कवि है।"

डा० धीरेन्द्र वर्मा

"प्रकृति से जीवन का रस ग्रहण करने में वह छायावादी हैं और जीवन की नश्वरता से आत्म-शान्ति का भाव खोजने में वह रहस्य-वादी हैं।,,

राजेन्द्र सिंह गौड़

"ये विशुद्ध रहस्यवाद के सफल कवि हैं।"

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र

किरण-कण

एक दीपक-किरण कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं;
सिद्धि पाकर भी तपस्या—साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण कण हूँ।

व्योम के उर में अगाध भरा हुआ है जो अँधेरा
और जिसने विश्व को दो बार क्या सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिये मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक किरण कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया;
सूर्य का सन्देश लेकर, रात्रि के उर में समाया;
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण कण हूँ।

साधना-संगीत

आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय।
आरती चूमे कि खिंचता जाय रंजित क्षितिज घेरा,
धूम-सा जल कर भटकता उड़ चले सारा अँधेरा,
हो शिखा स्थिर प्राण के प्रण की अचल निष्कंप रेखा,
हृदय में ज्वाला, हँसी में दीप्ति की हो चित्र-लेखा,

श्वास ही मेरी विनय की भारती बन जाय।
आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय।

यह हँसी मन्दिर बने, मुस्कान-क्षण हों द्वार मेरे,
मैं मिलूँ या तुम मिलो, ये मिलन-पूजा-हार मेरे!
आज बन्धन ही बनेंगे, मुक्ति के अधिकार मेरे
क्यों न मुझ में अवतरित होकर रहो अवतार मेरे।
प्राण वंशी बार--बार पुकारती बन जाय!
आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय!

कंकाल

क्या शरीर है! शुष्क धूल का---
थोड़ा सा छवि-जाल,
इस छवि में ही छिपा हुआ है,
वह भीषण कंकाल!
उस पर इतना गर्व! अरे,
इतने गौरव का गान,
थोड़ी-सी मदिरा है उस पर
सीखा है बलिदान!
मदमाती आँखों वाले ओ! ठहर अरे नादान
एक फूल की माला है, उस पर इतना अभिमान!
इस यौवन के इन्द्र-धनुष में
भरा वासना रंग,
काले बादल की छाया में,
सजता है यह ढंग
और उमंगों में भूला है,
बनकर एक उमंग,
एक टूटता स्वप्न आँख में
कहता उसे "अनंग"---
वह 'अनंग' जो धूल-कणों में भरता है उन्माद,
जर्जरपन में ले आता है नव यौवन की याद।

और (याद आया अब)—
मृगनयनी का नयन----विलास;
हँसती और लजाती थी----
चितवन कानों के पास;
कलित कपोलों की कोरों में----
भर ऊषा का रंग,
चंचल तीर चला चितवन का
करती थी भ्रू-भंग,
मैंने देखा था उसमें, गिरते-फूलों का हास
सन्ध्या के काले अम्बर में मिटता अरुण विकास।
दूर ! दूर ! मत भरो कान में
वह मतवाला राग,
यही चाहते हो मैं कर लूँ
इस जग से अनुराग ?
गिरते हुए फूल से कर लूँ
क्या अपना शृंगार ?
करने को कहते हो मुझसे
निश्चल शव से प्यार ?
गिन डालूँ कितनी आहों में अपने मन के भाव ?
पथराई आँखों में कैसे देखूं विष का स्राव ?
अरे पुण्य की भाषा में तुम
क्यों कहते हो पाप ?
क्षणिक सुखों की नींवों पर
क्यों उठा रहे सन्ताप ?
सुमन-रंग से किस आशा पर
करते अमर विहार ?
ओस-कणों में देख रहे—
सारे नभ का शृङ्गार ?

प्यार-प्यार क्यों प्यार कर रहे नश्वरता से प्यार ?
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार।
मृत्यु वही है, जिसमें होती
जीवित क्षण की हार;
वे ही क्षण क्यों भाग रहे हैं,
वर्तमान के पार ?
मेरे आगे ही, मेरे
जीवन का नाश विलास,
झाँक शुष्कता रही चोर-सी,
हृदय-सुमन के पास।
जीवन-आभा बनती जाती दिन-दिन अधिक मलीन,
अन्धकार में भी बनता हूँ मैं लोचन से हीन।
भूल रहा हूँ पाकर स्मृति की
चंचल एक हिलोर,
देख रहा हूँ मैं जीवन के
किसी दूसरी ओर,
हाँ, वह यौवन-लाली करती
जीवन — सुमन —विहार,
मादकता में धूलकणों से—
भी करती थी प्यार,
शुष्क पत्तियों से करती थी आलिंगन का हाव,
मतवाले बनकर आते थे मन के नीरस भाव।
काले भावों की रजनी में
आशा का अभिसार
मैंने छिपकर देखा था,
देखा था कितनी बार।

उसका आना और समुत्सुक
मेरे मन का प्यार,
दोनों भाव बना देते थे
लज्जित लोचन चार।

किन्तु मुझे क्या मिलता था ? क्या बतला दूँ उपहार
शीतल ओठों का मुरझाया-सा चुम्बन उस बार।
उत्सुकता के बदले में यह
भीषण अत्याचार।
घृणा, घृणा शत जिह्वा से
डसती थी बारम्बार ;
आँखों की मदिरा का बन जाना
आँसू की धार,
बाहु-पाश का शक्तिहीन हो
गिरना धनुषाकार ;

यह था क्या उपहार अरे इस जीवन का उपहार।
फूल-रूप यों रखता है यह धूल रूप संसार।
छविमय कहते हो जिसको
जिसमें है, रूप अपार,
अरे भरा है उसमें कितने
पापों का संसार।
पहिन रहे हो हार,
उसी में झूल रही है हार,
पुण्य मानकर यों करते हो
इन पापों से प्यार !

मुझे न छूना, बतलाओ मत अपना झूठा प्यार,
धूल समझकर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार।

६—आधुनिक हिन्दी 'राष्ट्रीय धारा'

प्रमुख कवि

विशेषताएं

(१) इस धारा के कवियों ने अपनी काव्य-प्रेरणाएँ राष्ट्रीय-जनजागरण, क्रान्तिकारी-राजनैतिक जैसे सामाजिक आन्दोलन, मजदूर-आन्दोलन आदि के विविध रूपों से प्राप्त की हैं।

(२) इनकी रचनाओं में ओज, वीर, धैर्य, त्याग, बलिदान, आत्म-निर्भरता, अतीत के प्रति प्रेम आदि राष्ट्रीय उत्थान एवं चारित्र्य संबंधी उद्भावनाएँ मिलेंगी। इनके वर्ण्य विषय भी इन्हीं गुणों के व्यंजक हैं।

(३) इनकी भाषा में अद्भुत प्रवाह और शक्ति, ओज तथा उदात्त भावुकता का आकर्षण विद्यमान है। शुद्ध परिमार्जित खड़ीबोली का रूप इन्होंने अपनाया है और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के योग्य बनाने का प्रयास किया है।

(४) प्रायः वीर और करुण रस के चित्र अधिक खींचे हैं, जो राष्ट्रीय भावनाओं का उद्रेक करने में सफल हो सकें।

प्रमुख ग्रन्थ

हिमकिरीटिनी, त्रिधारा और रेणुका, हुङ्कार, कुरुक्षेत्र।

माखनलाल चतुर्वेदी

जीवन-परिचय

पं० माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म संवत् १९४५ में हुआ। इनकी कविता का नाम 'एक भारतीय आत्मा' है। खंडवा से प्रकाशित प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'कर्मवीर' के ये संपादक रहे हैं। राष्ट्रीय जागरण के प्रयत्नों में इन्होंने सक्रिय भाग लिया है। गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन में इन्होंने कारावास भी भोगा। ये विशुद्ध राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं। राष्ट्रीय भाव इनके काव्य में ओत-प्रोत हैं। ये कुशल-पत्रकार, राष्ट्रीय कार्यकर्ता और ओजस्वी वक्ता भी हैं। द्विवेदी युग के कवि होने के कारण इनमें प्राचीन शैली की भी झलक है।

रचित-ग्रन्थ

काव्य—हिमकिरीटिनी, त्रिधारा, हिमतरंगिणी।
गद्य—साहित्य देवता।
नाटक—श्रीकृष्णार्जुन युद्ध।
कहानी—कला का।

काव्य विशेषताएं

(१) चतुर्वेदी जी अन्तर से प्रेममय जीवन के कवि हैं और बाहर से राष्ट्रीय कवि। इनकी प्रेम-भावना वैयक्तिकता से ऊपर है। इसी कारण राष्ट्रीय भावों के उद्रेक में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। ये आदर्शवादी भी हैं।

(२) इनके जीवन पर रहस्यवादी प्रवृत्ति का भी प्रभाव पड़ा है, किन्तु इनका रहस्यवाद देशप्रेम की मूलभावना से ओतप्रोत है।

(३) इनकी कविताओं में अन्तर्वेदना का एक रूप मिलता है। जैसे "कैदी और कोकिला" में। राष्ट्रीय कविताएँ सभी किसी न किसी हृदय की पीड़ावश व्यक्त हुई हैं। ये व्यक्त होकर मनुष्य की मार्मिकता को निरन्तर स्पर्श करती हैं। चतुर्वेदी जी बड़े कुशल भाव-शिल्पी हैं।

(४) इनकी भाषा खड़ी बोली है जिसमें संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ साथ अरबी, फारसी, उर्दू के शब्द भी स्थान पा जाते हैं। इनकी भाषा में ओज, एवं विलक्षण लालित्य है। भाव-प्रकाशन की उच्चता इनकी शैली की विशेषता है।

समालोचक

"श्री चतुर्वेदी जी हमारे राष्ट्रीय कवि हैं। इनकी रचनाएँ मानों नवीन रक्त से लिखी गई हैं।"

डा० रामकुमार वर्मा

"कविता के वर्त्तमान उपासकों में एक गौरवमय पद पं० माखनलाल जी को प्राप्त है। कला की प्रदर्शिनी में जाने से पहले उनकी कविता सहायता की ओर चली जाती है, जहाँ कला की चकाचौंध नहीं, आँसुओं का प्रस्त्रवण जारी रहता है।" "निराला"

"पं० माखनलाल चतुर्वेदी की कवि-वाणी द्वारा राष्ट्रीय नव चेतना के विभिन्न आन्दोलन प्रतिध्वनित हुए हैं।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

———

कैदी और कोकिला

क्या गाती हो, क्यूं रह रह जाती हो—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लाती हो ? सन्देशा किसका है—कोकिल, बोलो तो ?

ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं-तड़प रह जाना,
जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है,

हिमकर निराश कर गया रात भी काली ;
इस समय कालिमामयी जगी क्यूं आली ?

क्यूं हूक पड़ी ? वेदना बोझवाली सी कोकिल, बोलो तो ?
क्या लुटा ? मृदुल वैभव की रखवाली सी कोकिल बोलो तो ?

बन्दी सोते हैं, है घर्घर श्वासों का,
दिन के सुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाजों का,
बूटों का या सन्त्री की आवाजों का;
या करते गिननेवाले हाहाकार,
सारी रातों है एक, दो, तीन, चार !
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा ! (मधुर) यों गाने आई आली ?

क्या हुई बावली, अर्द्धरात्रि को चीखी कोकिल बोलो तो ?
किस दावानल की ज्वालाएँ हैं दीखी कोकिल बोलो तो ?

निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,

या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,
दीवार चीर कर अपना स्वर अजमाने,
या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !
या अधकार करते वे जग रखवाली,
क्या उनकी आभा तुझे न भाई आली,
तुम रवि-किरणों से खेल जगत को रोज जगानेवाली !—
क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो !

दूर्वा के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाते उस उद्दण्ड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा,
अब सर्वनाश करती क्यो हो ! तुम जाने या बेजाने—
कोकिल, बोलो तो !
क्यों तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल, बोलो तो !

क्या ! देख न सकती जजीरों का पहना !
हथकड़ियाँ क्यों ! यह ब्रिटिशराज का गहना !
मिट्टी पर ! अंगुलियों ने लिक्खे गान !
कोल्हू का चरखा-चूँ ! जीवन की तान !
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूँआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँआ।
दिन में मत करुणा जगे, रुलाने वाली,
इसलिए रात में गजब ढा रही आली !

इस शान्त समय में अन्धकार को भेद रो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो !

काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली,
काली लहर, कल्पना काली,
मेरी काल कोठरी काली,
टोपी काली, कमली काली,
मेरी लौह-शृंखला काली,
पहरे की हुँकृति की व्याली,
तिस पर है गाली ! ऐ आली !

इस काले संकट-सागर पर—मरने को मदमाती—
कोकिल—बोलो तो !
अपने चमकीले गीतों को किस विधि हो तैराती—
कोकिल, बोलो तो !

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर में संचार,
मेरा दस फुट का संसार।
तेरे गीतों उठती वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह !
देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रण-भेरी !

इस हुँकृति पर अपनी कृति से और कहो क्या कर दूँ ?
कोकिल, बोलो तो ?
मोहन के व्रत पर, प्राणों का आसव किसमें भर दूँ:—
कोकिल, बोलो तो ?

फिर कुहू—अरे क्या बन्द न होगा गाना,
यह अन्धकार में मधुराई दफनाना,
नभ सीख चुका है कमजोरों को खाना,
यों बना रहा अपने को उसका दाना ?
तिस पर करुणा गाहक बन्दी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियाँ श्वासों से धोते हैं।
सींकचे—रूपिणी लोहे की पाशों में
क्या भर देगी ? बोलो निद्रित लाशों में,
क्या घुल जाएगा रुदन तुम्हारा निश्वासों के द्वारा—
कोकिल, बोलो तो ?
और प्रात में हो जायेगा उलट-पुलट जग सारा—
कोकिल, बोलो तो ?

जवानी

आज अन्तर में लिये, पागल जवानी !
कौन कहता है कि तू
विधवा हुई खो आज पानी ?
चल रहीं घड़ियाँ
चलें नभ के सितारे
चल रहीं नदियाँ
चलें हिम खण्ड प्यारे,
चल रही है साँस,
फिर तू ठहर जाये ?
दो सदी पीछे कि
तेरी लहर जाये ?
पहन ले नर-मुण्ड-माला
उठ स्वमुण्ड सुमेस कर ले;

भूमि-सा तू पहन बाना आज धानी
प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी !

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दें,
एक हिम-गिरि एक सिर
का मोल कर दें;
मसल कर, अपने
इरादों सी, उठा कर,
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें ?

रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी ।
जाँच कर तू सीस दे दे कर, जवानी ?

वह कली के गर्भ से फल
रूप में अरमान आया !
देख लो मीठा इरादा, किस
तरह, सिर तान आया ?
डालियों ने भूमि पर लटका
दिये फल, देख आली !
मस्तकों की दे रही
संकेत कैसे, वृक्ष-डाली !

फल दिया ? या सिर दिया ? तरु की कहानी
गूँथ कर युग में, बताती चल, जवानी !

ये न मग है, तब
चरण की रेखियाँ हैं,
बलि दिशा की अमर
देखा-देखियाँ हैं ।

विश्व पर, पद से लिखे
कृति लेख हैं ये,
धरा तीर्थों की दिशा
की मेख हैं ये।
प्राण रेखा खींच ये, उठ बोल रानी!
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी!
टूटता-जुड़ता समय
'भूगोल' आया
गोद में मणियाँ समेट
खगोल आया,
क्या जले बारूद?
हिम के प्राण पाये।
क्या मिला? जो प्रलय
के सपने न आये!
धरा? यह तरबूज
है दो फाँक कर दे!
चढ़ादे स्वातन्त्र्य-प्रभु पर अमर पानी।
विश्व माने—तू जवानी है, जवानी!
लाल चेहरा है नहीं—
फिर लाल किसके?
लाल खून नहीं?
अरे कंकाल किसके
प्रेरणा सोयी कि
आटा दाल किसके?
सिर न चढ़ पाया
कि छाया—भाल किसके

नेह की वाणी कि हो आकाशवाणी,
धूल है जो जग नहीं पायी जवानी।

विश्व है असि का?—
नहीं संकल्प का है,
हर प्रलय का कोण
काया-कल्प का है।
फूल गिरते; शूल
शिर ऊँचा लिये हैं।
रसों के अभिमान
को नीरस किये हैं!

खून हो आये न तेरा, देख पानी,
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

जीवन-परिचय

आपका जन्म संवत् १९६५ विक्रमी में सिमरिया जिला मुंगेर (बिहार) में हुआ। आपने पटना विश्वविद्यालय में बी० ए० तक शिक्षा पाई। साहित्यिक जगत् में आप 'दिनकर' के नाम प्रसिद्ध हैं। इधर लगभग १५ वर्ष से इन्होंने काव्य-क्षेत्र में सक्रिय रूप से प्रवेश किया है। वर्त्तमान प्रगतिशील कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये गद्य और पद्य दोनों समान सफलता से लिखते हैं। आजकल 'दिनकर' जी भारतीय संसद के मनोनीत सदस्य हैं, एवं राष्ट्रकवि समझे जाते हैं।

दिनकर की रचनाएँ

काव्यसंग्रह—रेणुका, हुंकार, द्वन्द्वगीत, रसवंती, सामधेनी, धूप और धुँवा, बापू, इतिहास के आँसू, धूपछाँह, नीम के पत्ते, दिल्ली, नीलकुसुम।

प्रबन्धकाव्य—कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी।

गद्य—मिट्टी की ओर, अर्द्धनारीश्वर, रेती के फूल, संस्कृति के चार अध्याय।

काव्य की विशेषताएँ

(१) 'दिनकर' जी के काव्य की पृष्ठभूमि भारतीय जनजागृति के प्रति करुणा और सत्याग्रह-आन्दोलन आदि हैं। इनके विचारों की परिपक्वता इसी राष्ट्रीय जनजागरण के विकास में हुई है। भारतीय प्राचीन संस्कृति के प्रति इनमें तीव्र प्रेरणा है। परन्तु

इनमें समाजवादी समाजव्यवस्था की लोकहित भावना के प्रति अगाध श्रद्धा, आस्था और आकर्षण है। इसीलिए इनकी अभिव्यक्ति संघर्ष एवं परिवर्त्तनसूचक और विद्रोहात्मक होती है जिसके मूल में नवनिर्माण का भाव है।

(२) इनकी कविता के वर्ण्य विषयों में राष्ट्रीयता की भावनाएँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहती हैं। राष्ट्रीय चेतना के लिए कविता नवयुवकों को विशेष आकर्षित करती है। प्राचीन स्मृतियों के आवेग के आधार पर ये जागरण का गीत गाकर वातावरण में एक कर्मठता एवं प्रेरणा उत्पन्न कर देते हैं। इनकी कविता में एक नवीन आकर्षण होता है।

(६) 'दिनकर' जी में स्वाभाविकता विशेष रूप से देखने योग्य है। उनकी कविताएँ किसी न किसी लक्ष्य को स्थिर करके लिखी गई हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति उन्होंने अपनी प्रतिभाशाली काव्य-कला द्वारा स्थिर की हैं। कविता में भावों की बहुलता है।

(४) 'दिनकर' की भाषा में ओज, प्रवाह और ऐसी आकर्षण-शक्ति है कि वह प्रत्येक के हृदय को मार्मिकता के साथ स्पर्श करती है। भाषा परिमार्जित तथा शुद्ध खड़ी बोली है, जिसमें अलंकार तथा रूपक आदि स्वाभाविकता से अपना स्थान ग्रहण किए हुए हैं।

(५) नवीन राजनीतिक, सामाजिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के खंडन-मंडन में इनका कुछ काव्य बौद्धिक अधिक हो गया है।

समालोचकों की दृष्टि में

"श्री 'दिनकर' जी 'राष्ट्रीय धारा के नवीन कवियों में सर्व-श्रेष्ठ हैं। उनके काव्य की अनुभूतियों में देश-प्रेम की भावनाओं को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। उनकी कविता में एक स्वाभाविक आकर्षण-शक्ति है।"

डा० रामकुमार वर्मा

दिनकर की शैली के एक नेत्र में रणचण्डी का प्रकोप और दूसरे में रसवन्ती का प्यार छलक रहा है। रुद्र की शृंगी और रास की मुरली बजाने वाली यह शैली कभी ज्वालामुखियों में दहाड़ती, कभी चाँदनी में अठखेलियाँ करती है। यौवन के शृंगार और घनसार, मधु और हलाहल, मुसकान और उच्छ्वास एवं कंकन और करवाल की मिलित झंकार का अपूर्व आस्वादन दिनकर की दिव्य शैली में सहज सुलभ है।

—शिवबालक राय।

———

बोधिसत्व

सिमट विश्व-वेदना निखिल बन उठी करुण अन्तर में
देव ! हुङ्करित हुआ कठिन युगधर्म तुम्हारे स्वर में
काँटों पर कलियों, गैरिक पर किया मुकुट का त्याग
किस सुलग्न में जगा प्रभो ! यौवन का तीव्र विराग

चले ममता का बन्धन तोड़
विश्व की महामुक्ति की ओर

तप की आग, त्याग की ज्वाला में प्रबोध-संधान किया
विष पी स्वयं अमिय जीवन का तृषित विश्व को दान किया
वैशाली की धूल चरण चूमने ललक ललचाती है
स्मृति-पूजन में तप कानन की लता पुष्प बरसाती है
वट के नीचे खड़ी खोजती लिए सुजाता खीर तुम्हें
बोधि वृक्ष-तल बुला रहे कलरव में कोकिल कीर तुम्हें
शस्त्र-भार से विकल खोजती रह-रह धरा अधीर तुम्हें
प्रभो ! पुकार रही व्याकुल मानवता की जंजीर तुम्हें
आह ! सभ्यता के प्राङ्गण में आज गरल-वर्षण कैसा
घृणा सिखा, निर्वाह दिखाने वाला यह दर्शन कैसा
स्मृतियों का अन्धेर, शास्त्र का दम्भ, तर्क का छल कैसा
दीन-दुखी असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा
आज दीनता को प्रभु की पूजा का भी अधिकार नहीं
देव ! बना था क्या दुखियों के लिए निठुर संसार नहीं
धन-पिशाच की विजय धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई
दौड़ो बोधिसत्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई

धूप-दीप, आरती, कुसुम ले भक्त प्रेमवश आते हैं
मन्दिर का पट बन्द देख 'जय' कह निराश फिर जाते हैं
शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं
मेवा छोड़ शाक खाने का याद पुरातन नेम नहीं
पर गुलाब-जल में गरीब के अश्रु राम क्या पावेंगे
बिना नहाये इस जल में क्या नारायण कहलावेंगे
मनुज-मेध के पोषक दानव आज निपट निर्द्वन्द्व हुए
कैसे बचे दीन ! प्रभु भी धनियों के मुँह में बन्द हुए
अनाचार की तीव्र आँच में अपमानित अकुलाते हैं
जागो बोधिसत्व ! भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं
जागो विप्लव के वाक् ! दम्भियों के इन अत्याचारों से
जागो हे जागो तप-निधान ! दलितों के हाहाकारों से
जागो, गाँधी पर किये गये नरपशु पतितों के वारों से
जागो, मैत्री-निर्घोष ! आज व्यापक युगधर्म पुकारों से

जागो गौतम ! जागो महान
जागो अतीत के क्रान्ति-गान
जागो जगती के धर्म तत्व
जागो हे जागो बोधिसत्व

(रेणुका

चाँद और कवि

रात यों कहने लगा मुझ से गगन का चाँद,
आदमी भी क्या अनोखा जीव होता है !
उलझनें अपनी बनाकर आप ही फँसता,
और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।
जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूँ ?
मैं चुका हूँ देख मनु को जनमते-मरते;
और लाखों बार तुझसे पागलों को भी
चाँदनी में बैठ स्वप्नों पर सही करते ।

आदमी का स्वप्न ? है वह बुलबुला जल का,
आज बनता और कल फिर फूट जाता है;
किन्तु तो भी धन्य ठहरा आदमी ही तो
बुलबुलों से खेलता है, कवि बनाता है ।
मैं न बोला किन्तु, मेरी रागिनी बोली,
चाँद ! फिर से देख, मुझको जानता है तू ?
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं ! है यही पानी !
आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू ?

मैं न वह जो स्वप्न पर केवल सही करते,
आग में उसको गला लोहा बनाती हूँ !
और उस पर नींव रखती हूँ नये घर की,
इस तरह दीवार फौलादी उठाती हूँ ।
मनु नहीं, मनु-पुत्र है यह सामने-जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है,
बाण ही होते विचारों के नहीं केवल,
स्वप्न के भी हाथ में तलवार होती है ।

स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर दे,
रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं ये;
रोकिये, जैसे बने, इन स्वप्न वालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं ये ।

—o—

लोहे के पेड़ हरे होंगे

लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गान प्रेम का गाता चल,
नम होगी यह मिट्टी जरूर, आँसू के कण बरसाता चल ॥

सिसकियों और चीत्कारों से, जितना भी हो अवकाश भरा,
कंकालों का हो ढेर, खप्परों से चाहे हो पटी धरा।
आशा के स्वर का भार, पवन को लेकिन लेना ही होगा,
जीवित सपनों के लिये मार्ग, मुर्दों को देना ही होगा।
रंगों के सातों घट उँड़ेल, यह अँधियाली रँग जायेगी,
ऊषा को सत्य बनाने को, जावक नभ पर छितराता चल ॥१

आदर्शों से आदर्श भिड़े, प्रज्ञा प्रज्ञा पर टूट रही,
प्रतिभा प्रतिभा से लड़ती है, धरती की किस्मत फूट रही।
आवर्तों का है विषम जाल, निरुपाय बुद्धि चकराती है,
विज्ञान-यान पर चढ़ी हुई सभ्यता डूबने जाती है।
जब जब मस्तिष्क जयी होता, संसार ज्ञान से जलता है,
शीतलता की है राह हृदय, तू यह संवाद सुनाता चल ॥२

सूरज है जग का बुझा-बुझा, चन्द्रमा मलिन-सा लगता है,
सबकी कोशिश बेकार हुई, आलोक न इनका जगता है।
इन मलिन ग्रहों के प्राणों में कोई नवीन आभा भर दे,
जादूगर ! अपने दर्पण पर घिसकर इनको ताजा कर दे।
दीपक के जलते प्राण, दिवाली तभी सुहावन होती है,
रौशनी जगत को देने को अपनी अस्थियाँ जलाता चल ॥३

क्या इन्हें देख विस्मित होना, जो हैं अलमस्त बहारों में,
फूलों को जो हैं गूँथ रहे सोने-चाँदी के तारों में ?

मानवता का तू विप्र, गन्ध-छाया का आदि पुजारी है,
वेदना-पुत्र ! तू तो केवल जलने भर का अधिकारी है।
ले बड़ी खुशी से उठा; सरोवर में जो हँसता चाँद मिले,
दर्पण में रचकर फूल, मगर उसका भी मोल चुकाता चल ॥४

काया की कितनी धूम धाम ! दो रोज चमक बुझ जाती है;
छाया पीती पीयूष, मृत्यु के ऊपर ध्वजा उड़ाती है,
लेने दे जग को उसे, ताल पर जो कलहंस मचलता है;
तेरा मराल जल के दर्पण में नीचे-नीचे चलता है।
कनकाभ धूल झर जायेगी, ये रङ्ग सभी उड़ जायेंगे,
सौरभ है केवल सार, उसे तू सबके लिये जुगाता चल ॥५

क्या अपनी उनसे होड़, अमरता की जिनको पहचान नहीं,
छाया से परिचय नहीं, गन्ध के जग का जिनको ज्ञान नहीं !
जो चतुर चाँद का रस निचोड़ प्यालों में ढाला करते हैं,
भट्ठियाँ जलाकर फूलों से जो इत्र निकाला करते हैं।
ये भी जायेंगे कभी, मगर आधी मनुष्यता - वालों पर,
जैसे मुसकाता आया है, वैसे अब भी मुसकाता चल ॥६

सभ्यता-अङ्ग पर क्षत कराल, यह अर्ध-मानवों का बल है,
हम रोकर भरते उसे, हमारी आँखों में गंगाजल है।
शूली पर चढ़ा मसीहा को वे फूले नहीं समाते हैं,
हम शव को जीवित करने को छायापुर में ले जाते हैं।
भींगी चाँदनियों में जीता, जो कठिन धूप में मरता है,
उजियाली से पीड़ित नर के मन में गोधूलि बसाता चल ॥७

यह देख नई लीला उनकी, फिर उनने बड़ा कमाल किया,
गाँधी के लोहू से सारे भारत-सागर को लाल किया।
जी उठे राम, जी उठे कृष्ण, भारत की मिट्टी रोती है,
क्या हुआ कि प्यारे गाँधी की यह लाश न जिन्दा होती है।

तलवार मारती जिन्हें, बाँसुरी उन्हें नया जीवन देती,
जीवनी-शक्ति के अभिमानी ! यह भी कमाल दिखलाता चल ॥ ८

धरती के भाग हरे होंगे, भारती अमृत बरसायेगी,
दिन की कराल दाहकता पर चाँदनी सुशीतल छायेगी।
ज्वालामुखियों के कण्ठों में कलकण्ठी का आसन होगा,
जलदों से लदा गगन होगा; फूलों से भरा भुवन होगा।
बेजान, यंत्र-विरचित, गूँगी, मूर्तियाँ एक दिन बोलेंगी,
मुँह खोल-खोल सबके भीतर शिल्पी ! तू जीभ बिठाता चल।

(नील कुसुम से)

— —*— —

काव्य-मकरन्द

व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ

कबीर—'साखियाँ'—मसान—स्मशान, मुर्दा जलाने की भूमि। केसन—केश, बाल। पीर—गुरु, पीड़ा। भुजंगम—साँप। मनका—माला का गुरिया।

'पद'—दीगंबर—दिगम्बर, जैन साधु। चुंडित—चोटी रखाने वाले। तुचा—त्वचा, खाल। निरति—नृत्य। मीन—मछली। नउतनु—नूतन, नया।

जायसी—भूआ—सेमर की रूई। मुखरात—सुर्खरू, तेजवान्। सिहिट—सृष्टि। सरा—चिता। अनियाउ—अन्याय। गिउ—ग्रीवा, गर्दन। पदुमगंध ससि—कमल के सुगन्ध वाले चन्द्रमा के समान। द्वादस बानी—(द्वादश वर्ण अर्थात् १२ आदित्य) सूर्य के रंग वाले। परेवा—पक्षी। कंठा फूट—प्रौढ़ता आयी, सयाना हुआ। वाणी फूटी। पतंग कै मारा—पतंग बनाकर मारा। उतंगू—उत्तुङ्ग, ऊँचा। किलकिला—समुद्र के ऊपर मछली पकड़ने के लिए मँडराने वाला जलपक्षी। लोनी—सुन्दर। होनी—काम। अछरी—अप्सरा। ओनाहीं—आते हैं। पुछार—मोर। नगवासी—नागफाँस। दुहेला—कठिन। मेरवै—मिलावै।

सूरदास—सचु—सुख। पलानो—प्रस्थान करो, जाओ। आसति—मुक्ति। सयानप—चतुराई, सयानापन। टाँड़ा—व्यापार का माल लादने वाला पशुओं का झुंड। खाँड़े—तलवारें। गाँड़े—गन्ने के टुकड़े। झाला—बकवादी। डांड़े—दंड दिया। अधारि—कंधे पर लटकाने वाले दो झोले। हारिल—हठी पक्षी, जो सर्वदा लकड़ी पर ही बैठता है। मूर—मूल, पूँजी। कुरँग—हिरन। षटपद—भौंरा। हिमीहत—पाले से मारे हुये। वायस—कौआ। हंससुता—

जमुना। कगरी—कगार, किनारा। अनगन भाँति—असंख्य प्रकार की।

तुलसीदास—चारिउ चरन—पूर्ण रूप से। परम गति—मोक्ष। निरुज—नीरोग, स्वस्थ। निर्दम्भ—अभिमानरहित। नभगेस—गरुड़। ससि—शस्य, अन्न। कैरव—कोकाबेली। मयूखनि—किरणों। अजाखुर—बकरी का खुर। तटिनी—नदी। बनब हन—पानी की सवारी। सहरी—छोटी सफरी नाव। घरनी—स्त्री। बिधुबैनी—चन्द्रमा के समान मुख वाली। तड़ाग—सरोवर। सोन—लाल। बिसिखन—बाणों से। रविकर-नीर—मृग मरीचिका। पुण्यजल—पवित्र गंगा का जल।

मीराबाई—मकराकृत—मछली के आकार का। भगत-बछल—भक्तवत्सल, भक्तों पर कृपा करनेवाले। बाण—बान। आदत—स्वभाव। हिवड़ा—हृदय में। अणी—अनी, नोक। पुरातण—पुरानी। मरज्यादाँ—मर्यादा, बन्धन। कूयां—कोई। छूया—छाछ। मितं—मित्र। घणकूँ—बादल के लिए। आरत—आरती। णेवाजाँ—कृपा की। सुख-साराँ—सुख के समुद्र, आनन्द-सिन्धु।

नोट—राजस्थानी भाषा में 'न' के स्थान पर 'ण' हो जाता है। अतः मीरां के पदों में 'ण' से 'न' करके छात्र सरलता से उनके पदों को समझ सकते हैं।

केशवदास—अश्वमेध—एक प्रकार का यज्ञ। हय—घोड़ा। सत्रुहन्ता—शत्रुघ्न। करीस्वर—गजेन्द्र। अशेष—सम्पूर्ण। सितिकंठ—नीलकंठ। तटी—समाधि। ओघ—समूह। धूरजटी—शंकर।

सेनापति—तरनि—सूर्य। वृष—वृष नक्षत्र। बिरमत हैं—विश्राम करते हैं। सीरी—ठंढी। उवैं—उदित होने पर। लुवैं—लू। सीकर—शीत, सर्दी। सीतलता—सर्दी, शीत की बेलि। उनये—उमड़े। सेत—श्वेत। शृंग—चोटी। स्फटिक—पारदर्शी, श्वेत

पत्थर। अडम्बर—धूमधाम से। छिछकैं—छिड़कते हैं। छछारैं—छींटे। सुधा के महल—कलई पुते सफेद भवन, अमृत के बने घर। पहल—रूई की मोटी तह। रजत—चाँदी। गन—समूह। अनल—अग्नि। सहसकर—हजार किरणों वाले सूर्य। सहस चरन-हजार चरणों वाले। मसि—स्याही।

विहारीलाल—पून्योई—पूर्णमासी ही। ओप—कान्ति। कनक—सोना. धतूरा। कहलाने—झुलस गये, कहे गये, किसलिए। दाघ—गर्मी। निदाघ—ग्रीष्मऋतु। बै—वय, अवस्था। नै—जलप्रवाह। वृषभानुजा—वृषभानु—जा—राधा, वृषभ—अनुजा—गाय। हलधर—बलराम, किसान। बानक—वेश, धज। बींधे—फँसे। गीधे—परके। कुरंग—हिरन। बिरद—यश। बरु—चाहे। पुहिमी—पृथ्वी, धरती। सुकृत—पुण्य। दई—ईश्वर, दी हुई।

देव—चितावनीन—चेतावनी, उपदेश। विरद—यश। किरीट—मुकुट—दल-दूकन सों—दो दलों, अंकुरों से युक्त। आखर—अक्षरों। कागर—काग़ज़। जंबू—जामुन। सुधासरो—अमृत का सरोवर। मले—मलय, चन्दन। मल्लि-मल्लिका, चमेली। टिकासरो-आश्रय। अलोन—भौंरे। किरचैं—टुकड़े। किंसुक—टेसू। ऊनो-कम। इंदिरा-लक्ष्मी। कोरे—क्रोड़ में, गोद में।

पद्माकर—मुहीम—युद्ध, आक्रमण, चढ़ाई। नसाकी—मादक। झौंस—झुण्ड। ऊकन—चलने। को ती—कौन स्त्री। गोती—गोत्र वाला। चपेट—दाब, आघात। स्यौरी—शबरी, भीलनी। झाँझरी—छिद्रवाली। हेम—सोना। हय—घोड़ा। हलके—झुण्ड। गजानन—गणेश। गोइ—छिपा। दिगम्बर—नग्न। पाहुनी-मेहमान, अतिथि।

रत्नाकर—प्रेमपगे—प्रेम से सने हुए, प्रेम परिपूर्ण। हौंस—उत्कट इच्छा। मिदुराने—मींचने। सुधाकर मुखी—चन्द्रमुखी, सुन्दरी स्त्रियाँ। कछार—नदी के किनारे की भूमि। झार—झाड़ी। बिलैहै—विलीन होगी। सारन—शान्त करना। भखिबौ—खाना। बराइहै—

दूर करेगा। चबाव--चर्चा। चकात--ठिठकते हैं। सुधियात--ध्यान में आती है। सांठी--पूँजी। नाठी--नष्ट होनेवाली। फेर-चक्कर। फुलिङ्ग--स्फुलिङ्ग, चिनगारी। फनिंद--फणीन्द्र, शेषनाग। लुआर-लपट। दिगङ्गना--दिग्वधू। रजत--चाँदी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र--औधि--अवधि, समय की सीमा। तुच्छन-क्षुद्र। बगमाल- बगुलों की पंक्ति। सीरी--ठण्ढी। मसूसन--आघातों, दबाव। अतन--काम। कूल--किनारा। मुकुर--दर्पण। गुड़ी-पतङ्ग। ब्रजरमनी—गोपिकायें। जुगपच्छ--कृष्ण-शुक्ल पक्ष। मल्ल-पहलवान। पारावत -कबूतर।

'हरिऔध'--तम--अँधेरा। व्योम--आकाश। तमचुर--मुर्गा। अंभोज--कमल। लोनी-सुन्दर। भानुजा-यमुना। अंक-गोद में, बीच में। मेदिनी--पृथ्वी। दव--दावाग्नि। व्याली- सर्पिणी। वीचियां—लहरें। पेट में चूहे कूद रहे--भूख लगी है।

मैथिलीशरण गुप्त--आकर--खानें। वितान--चँदोवा। पुंजाकृति--नीचे चौड़ा ऊपर पतला, स्तूपाकार। परिखा—खाई श्रमवारि बिन्दु—पसीने की बूँदे। शुक्ति--सीपी। किसलय--कोंपल। कलापि--मोर। चन्द्रकला--पंख जिनमें चन्द्र का आकार बना है। शुक्ति-वंचिता--सीपी से रहित। श्रमजबिन्दु--पसीने के बूँद। अँकोर--एकत्र करके। उत्तरीय--उपरना। बोध-विनिमय--ज्ञान के आदान-प्रदान में। वृत्त-संचय--वृत्तांत एकत्र करना। उपालम्भ--उलाहना।

'प्रसाद'--उत्तुंग-ऊँचे। शिखर—चोटी। हिम-बर्फ। स्फीत—पुष्ट। निगूढ़—छिपा हुआ। अवसाद—दुःख। प्रत्यावर्तन—घूमना करका—बिजली। ज्योतिरिंगणों—ज्योतिपिंड। विष्कम्भ—नाटक वे अंक के बीच में अभिनय में न आनेवाली घटनाओं की सूचना देने वाला दृश्य। अतिवाद—किसी वस्तु की पराकाष्ठा को लेकर चलने वाला वाद।

'निराला'—तुंग—ऊँचा। शृंग—चोटी। रागानुग—राग के पीछे आने वाले। श्रान्त-थके हुए। दुस्तार—कठिनाई से पार किया जा सकने वाला। निशीथ—अर्द्धरात्रि। अम्बर—वस्त्र। दिग्वसना—नग्न। तड़ित्तूलिका—बिजली की तूली। वृन्त—गुच्छा। विपथ—पथ से विमुख।

सुमित्रानन्दन पन्त—भीम-भयंकर। तुमुल—घोर। सकाल—सबेरे, सकाले। दैन्य-तमिस्र—गरीबी का अन्धकार। प्रभूत—बहुत। यन्त्राभिभूत—यन्त्रों (मशीनों) से ओतप्रोत। नतपद—पद पर झुकी हुई। अनृत—झूठ। मैः—भय करो। शाश्वत—सदा रहने वाले। दुरित—पाप। विवर्तन—चक्कर। कंचुक—केंचुल। वक्र कुंडल—टेढ़ी कुण्डली। अतिवात—आंधी, जोर की वायु। शिरा—धमनी। स्फुलिंग—चिनगारी। पीन—पुष्ट।

महादेवी वर्मा—यामिनी—रात। कालिन्दी—यमुना। मदिर—मादक। वात—हवा। मधुस्नात—मधु में नहाये हुए। कैरव—कोकाबेलि। निस्पन्द—बिना डोले। नीरव—शान्त। अधर-विचुंबित—अधरों से चूमा हुआ। नन्दन—देवताओं का उपवन। शलभ—पतिंगा। स्मित—मुसकान।

रामकुमार वर्मा—व्योम-आकाश। पाश—बन्धन।

माखनलाल चतुर्वेदी—बटमार—डाकू। वल्लरी—बेलि। आसव—मदिरा।

'दिनकर,—निखिल—संपूर्ण। गैरिक—गेरुआ। गरल-वर्षण—विष-वर्षा। कंकाल—हड्डी का ढाँचा। जावक—आलता। पीयूष—अमृत। जुगाता—सँजोता।